Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्

जन ज्ञान

मासिक

सितम्बर १९७३

राम चन्द्र देहलवी

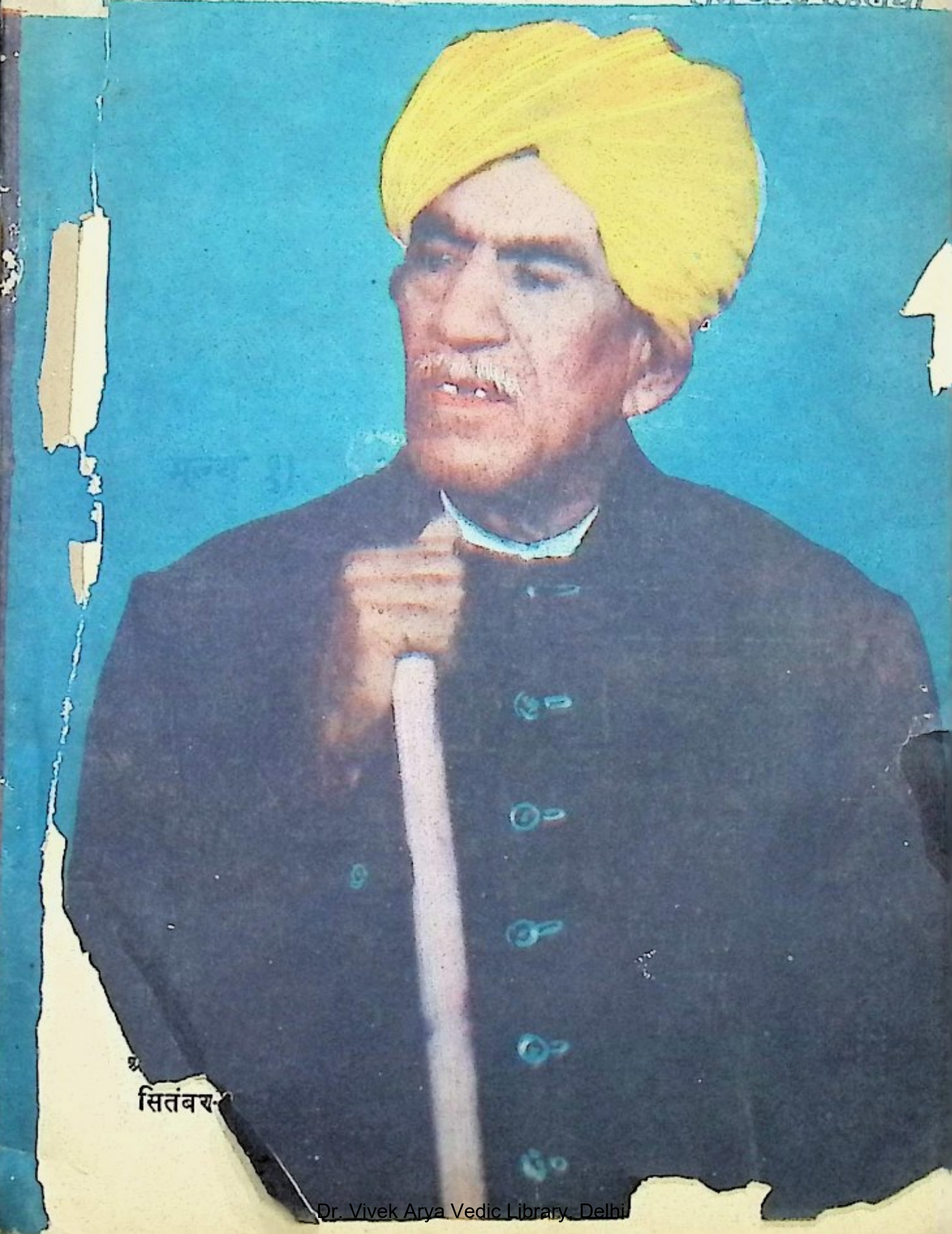

सितंबर-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आश्विन **अंक में पढ़िये** संवत् २०३०

			पृष्ठ
१. संपादकीय	(राकेश रानी)	....	६
२. मैं हृदय मंदिर से लिख रहा हूँ	(भारतेन्द्रनाथ)	...	७
३. दृढ़ संकल्प : गायत्री जप :	महात्मा प्रभु आश्रित जी	..	१०
४. ब्रह्माकुमारी मत दर्पण :	पं० शिवदयालु जी	...	२१
५. गृहस्थ जीवन की सुख वृद्धि :	श्री रघुनाथ प्रसाद पाठक	...	२६
६. टेलीविजन का सिद्धान्त :		...	३१
७. वैदिक दर्शन : नयी दृष्टि :	गिरिजेश शर्मा	..	३३
८. वैदिक-सुरभि	पं० वेदभूषण	...	३८
९. पापा-डैडी (कविता)	काका हाथरसी	...	४३
१०. स्वामी दयानन्द और कर्मवाद :	प्रो० श्रीराम शर्मा	...	४४
११. आप ही के पत्र		...	४६
१२. पितरों का श्राद्ध और तर्पण :	श्री वीरेन्द्र शास्त्री	...	५६
१३. सार्वदेशिक सभा के मंत्री की घोषणा		.	६१
१४. रामायण और रामराज्य :	प्रो० सन्तराम आनन्द	...	६५
१५. मक्खन लगाना—कला नं० ६५ :	मिथिलेश एम० ए०	..	६६

इस अंक का विशेष

१६. नारायण-अध्यात्म सुधा महात्मा नारायण स्वामी जी लिखित अनुपम पुस्तिका ... ८१

वेद-भाष्य-यज्ञ की सफलता के लिए

जिन्होंने अभी तक भी आहुति नहीं भेजी वे

कम से कम २५) आज ही भेजें

१०१) में वेद भाष्य प्लास्टिक कवर सहित

मंगा कर किसी मित्र को भेंट करें

डाक व्यय सहित १२१) भेजिए

—अध्यक्ष दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पंजीकृत ट्रस्ट

दयानन्द संस्थान
नई दिल्ली का प्रकाशन

जन-ज्ञान

(मासिक)

●

सम्पादक

—राकेश रानी

●

दूरभाष: ५६६६३६

●

पता—
१५६७ हरध्यानसिंह मार्ग
निकट ३१-नाईवाला
करौल बाग, नई दिल्ली-५

●

वार्षिक मूल्य १२)
विदेश में—एक पौंड
आजीवन—२०१)

●

वर्ष ६ : अंक ५
आश्विन-संवत् २०३०
सितंबर—१९७३

प्रश्न !

कहां है जीवन का उन्माद,
कहां है पथ का मधु अवसाद,
कहां है दिव्य ज्योति सा गीत,
कहां है स्वप्नों का संगीत,

रुद्ध हैं क्यों वीणा के तार,
क्रुद्ध है क्यों लुटता संसार,
अवनि क्यों करती है अभिसार,
सुधा क्यों बिछा रही मद भार ?

धरा करती है कब विश्राम,
सूर्य ने मांगा कब आराम,
नदी का अविरल तरल प्रवाह,
दिखाता कैसा मदिर उछाह ?

शून्य के पार, गगन के पास,
मन का कैसा पथ अविराम ?
प्रश्न का उत्तर देगा कौन,
मनुज को गति देगा अब कौन ?

भ्रमों में भटक रहा संसार,
सत्य का भूल गया व्यापार,
ज्ञान की कौन करे मनुहार,
ज्योति का कौन करे श्रृंगार,

प्रश्न हैं उत्तर किस के पास,
धरा को देगा पलटा कौन ?
युगों की धारा बदले प्राण,
विजय पर कर पाए अभिमान ?
कहां वह प्रभु का पुत्र महान् ?

—भारतेन्द्र नाथ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्य समाज स्थापना शताब्दी
की सफलता के लिए

५ लाख रु० की आवश्यकता

संसार को वेदमय बनाने के लिए—
हर घर आंगन तक ऋषि संदेश पहुँचाने के लिए

ऋषि भक्त

५ लाख रुपए का प्रबन्ध करें

स्थापना शताब्दी रचनात्मक रूप से
जो मनाना चाहें वे
अधिक से अधिक
आहुति भेजें

अध्यक्ष—
दयानन्द-संस्थान [पंजीकृत न्यास]
नई दिल्ली-५ [भारत]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आवाहन : वेद का

हमने हजारों ऐसे व्यक्तियों तक 'वेद' पहुंचाया है जिन्होंने कभी वेद का नाम भी नहीं सुना था। लाखों ऐसे व्यक्तियों को 'वेद' के दर्शन कराए हैं जो समझते थे 'वेद' का अस्तित्व धरती तल से लुप्त हो चुका है।

करोड़ों व्यक्तियों तक यह संदेश पहुँचाया है कि "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है और वेद का पढ़ना पढ़ाना हमारा परम धर्म है।"

अब तक १० हजार परिवारों में महर्षि दयानन्द का वेद भाष्य पहुंचाने का पुण्य कार्य किया जा चुका है।

किन्तु लक्ष्य बहुत दूर है

संसार के प्रत्येक परिवार में 'वेद' पहुंचाने के लिए हम संघर्ष कर रहे हैं। हमें विश्वास है कि परमात्मा के बेटे, सच्चे आर्य हमारा साथ देंगे।

अपने जीवन में हम लक्ष्य पूरा न भी कर सकें तब भी हमारे पश्चात् 'वेद' को घर-घर पहुँचाने के लिए अनेक प्रभु भक्त लगेंगे।

—हम बढ़ रहे हैं, चल रहे हैं" और चलते रहेंगे। स्वयं जलना पड़ेगा तो जलेंगे भी, पर 'वेद' की ज्योति को ज्योतिर्मय करते रहेंगे।

वेद और प्रभु के भक्तो!

सोचो समझो और

'वेद को घर-घर पहुंचाने के धर्म यज्ञ में अधिक से अधिक आहुति दो।

—भारतेन्द्र नाथ

अध्यक्ष
दयानन्द संस्थान नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रभु के प्रति

प्यारे, एक प्रश्न उठ आया—
तूने मुझे बनाया है या मैंने तुझे
बनाया ?

यदि मैं ही कर्ता हूँ तेरा,
तो कर्तृत्व मृषा क्या मेरा !
मिथ्या हुआ स्वयं तब तो मैं
दीखा अब तो और अँधेरा !
अच्छा तर्क उठाया !
प्यारे, एक प्रश्न उठ आया ?

यदि है तू ही कर्त्ता धर्ता
और अन्त में सब का हर्ता
तो फिर क्यों प्रामाणिक मति से
बता मुझे मेरे भव-भर्ता,
मैंने तुझे न पाया ?
प्यारे, एक प्रश्न उठ आया

यदि प्रसिद्ध तू मेरी मति से,
तो फिर मैं पाऊं किस गति से
श्रद्धा से नत-मस्तक होकर
यत्न करूं क्या मन की रति से
हां, अब तू मुस्काया ?
प्यारे, एक प्रश्न उठ आया ।

—राष्ट्र कवि मैथिली शरण गुप्त

हे प्रभु !

सांध्य-गीत-सा मधुर रूप धर
शत सहस्त्र अंचल अन्तर से,
झंकृत हो हे अन्तरतर !
अनहद-ध्वनि-सा मनोगगन में
आशा-तडित् निराशा-घन में
मत्त मयूर नृत्य-सा चंचल,
थिरक उठो हे भुवनेश्वर !
सान्ध्य-गीत···।
तरुण उषा के मधु-प्रणयन-सा
मुँदे सुमन-दल उन्मीलन-आ
शनैः-शनैः स्वर्णाभ मनोहर,
विकसित हो हे अखिलेश्वर !
सान्ध्य-गीत···।
विश्व-छोर पर करुणा-रेखा
झलक रही मिथ्या मद-लेखा
उज्ज्वल वारिद पंखों पर आ,
शान्तिसुधा बरसा क्षण भर !
सान्ध्य-गीत···।
निर्मम जग सब मलिन पाश में
सिसक रहा है भग्न-आश में
इन्द्र-धनुष-सा रच आशा-पुल
झंकृत कर दो मेरा स्वर
सान्ध्य-गीत···।

—सत्याचरण एम० ए

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तरणि तार भगवान् !

दर्शन दो भगवान् !

भटक रही हूँ डगर-डगर में ढूढ रही तव धाम ।।
दर्शन दो भगवान् !
किस भांति मिलूं किस ठौर मिलूं मैं तो हूं निपट अजान
पग-पग पर हैं अन्धकार पथ ढके हुए अज्ञान ।
दीप बुझा मैं कैसे पाऊं, दे दो रवि का ज्ञान ।।
दर्शन दो भगवान् ।
राह अकेली बढ़ती जाती, सोच-सोच कर ध्यान !
तूफानों में भूल सकूं ना, दो प्रभु ! यह वरदान ।
और निरन्तर चलते-चलते, सुन पाऊं मधु तान ।।
दर्शन दो भगवान् ।
अपनी वीणा के तारों से, सुना सकूं झङ्कार ।
बजा सकूं वह राग मिलन के, मिल जाए करतार ।
तार-तार में सार तुम्हारा, तरणि तार भगवान् ।।
दर्शन दो भगवान् ।

—राकेश रानी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

राष्ट्र के दो शत्रु

भारत की प्रगति के दो महान् शत्रु यदि समाप्त कर दिये जायं तो देश की बहुत सी समस्यायें सुलझ सकती हैं। इन दो शत्रुओं को आज सबसे बड़ा मित्र समझा जा रहा है, यह और भी अधिक आश्चर्य की बात है। हमारी दृष्टि में प्रथम शत्रु है 'समाजवाद' और दूसरा शत्रु है 'राष्ट्रीय करण'।

आज हमारा शासन इन्हीं दो को प्रत्येक रोग की रामबाण औषधि समझ रहा है किन्तु मर्ज बढ़ता जा रहा है ज्यों ज्यों दवा की जा रही है। हमारे शासन ने प्रथम भूल की, समाजवाद का खोखला नारा देकर। नेता यह भूल गये कि भारत एकधर्म प्रधान देश है। यहाँ व्यक्ति धर्म से सुधरता है और उसी से प्रेरणा भी पाता है। किन्तु शासक वर्ग ने सबसे पहले धर्म को मिटाने के लिए धर्म निरपेक्षता का चक्कर चलाया। मजहब को धर्म मानकर सभी को ऐसा बहकाया कि भारत की जड़ें ही हिल गईं। व्यक्ति का निर्माण नहीं हुआ, और समाजवाद का नारा छा गया। समाज कहीं आसमान से तो टपकता नहीं। व्यक्ति पिसता गया और समाजवाद के मोहक नारे में उलझता गया।

श्रम साधना त्याग और देश-प्रेम का मन्त्र शासक न ले सके न दे सके। परिणाम स्वरूप देश की सारी प्रगति रुक गई और रही सही कसर राष्ट्रीयकरण के नारे ने पूरी कर दी। बैंकों का राष्ट्रीयकण, गेहूँ का राष्ट्रीयकरण कर जनता को बहकाया पर देश का सारा ढाँचा ही लड़खड़ा गया। गेहूं नहीं, चीनी नहीं, दूध नहीं, घी नहीं, कपड़ा नहीं, कागज नहीं। हैं हड़तालें, बन्द, गोलियां और भाषण। शासक वर्ग निकम्मा, विरोधी दल स्वार्थी, जनता में निराशा, और चारों ओर अराजकता। यह है आज का भारत जिसके लिए हम, आप, वे सभी दोषी हैं। जो इस देश के नागरिक हैं।

आज आवश्यकता है कि हम इन दोनों महानाश के नारों को छोड़ें और त्याग-श्रम व राष्ट्र प्रेम के नाम पर सारे देश को एक झण्डे के नीचे खड़ा करें। उत्पादन बढ़ायें। काम और केवल काम ही देश को बचा सकता है। हमने १५ अगस्त को प्रधानमन्त्री का लालकिले से लड़खड़ाता भाषण सुना था। हमें निराशा हुई देश के नेता से ऐसी बातें सुनकर। देश ऐसे निराशावादी नेताओं के भरोसे नहीं बचेगा।

देश वासियो! अपने नेता स्वयं बनो। और जहां भी हो काम ईमानदारी स करो, त्याग का जीवन बिताओ और राष्ट्र प्रेम का मन्त्र फूंको। समाजवाद और राष्ट्रीयकरण के नाग पाश से स्वयं भी बचो और देश को भी बचाओ।

—राकेश रानी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मैं हृदय मन्दिर से लिख रहा हूँ ~ भारतेन्द्र

ऋषि दयानन्द जीवित हो गए !

शीर्षक पढ़ कर चौंकिए नहीं—ऋषि दयानन्द सचमुच जीवित हो गए और वह भी वहीं, जहां उन्हें विष दिया गया था। जोधपुर के आर्यों ने अपने कार्यों से जोधपुर की नगरी में गुरुदेव दयानन्द को अमर कर दिया। आज जोधपुर के कोने-कोने में ऋषि की जय के स्वर गूंज रहे हैं। सत्यार्थ प्रकाश जोधपुर का धर्म ग्रंथ बन गया है। 'वेद' का प्रकाश जोधपुर के अंतरिक्ष में फैल रहा है। और वहां हमारे गुरु ऋषि दयानन्द के सिद्धान्त जीवित होकर राज्य करने जा रहे हैं, तो आप ही बताइये हमारा शीर्षक क्या ठीक नहीं ?

आर्य नेता सोए पड़े हैं, आर्यसमाजों के अधिकारी गद्दियां बचाने में व्यस्त हैं। लड़ाई-झगड़े-स्वार्थ ने ऋषि दयानन्द की हत्या कर दी थी, जोधपुर के आर्यजन धन्य, उनका वीर माताएं धन्य, जिन्होंने ऐसे पुत्र उत्पन्न किए, जिन्होंने ऋषि के आदर्शों को साकार किया।

हम चाहते हैं कि सारे देश के आर्य समाज जागें। पर हमारे नेता जगाते नहीं, और हमारी आवाज वे सुनते नहीं। काश कि आर्यसमाजों के अधिकारी ऋषि दयानन्द को अपना गुरु स्वीकार कर सकते ? और अपने गुरु के ग्रन्थ सत्य के प्रकाश स्तंभ सत्यार्थप्रकाश के प्रचार के लिए सब कुछ न्योछावर कर देते।

हमारा मन आकुल है और प्रतीक्षा निरत भी, हम वह घड़ी देखने को उत्सुक हैं जब देश का हर आर्यसमाज ऋषि दयानन्द को जीवित करने के लिए कमर कस कर खड़ा हो सकेगा। आर्यो ! आर्यसमाज स्थापना शताब्दी मनानी है तो सब कुछ छोड़ो, लग जाओ अपने-अपने क्षेत्र में और ऋषि का अमर ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश सर्वत्र पहुँचाओ। उठो ! गुंजाओ, वेद-सत्य के प्रबल स्वर——

हमें क्या ? ? ?

नए पाकिस्तान बनने की तैयारी हो रही है—

हमें क्या ?
ईसालैंड बन रहा है।
हमें क्या ?
कम्यूनिज्म फैल रहा है।
हमें क्या ?
भारत का सब कुछ मिट रहा है।
हमें क्या ?
भारतीय स्वतंत्रता पर संकट है।
हमें क्या ?
मुसलमान हमें मिटाने का षड़यन्त्र

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रच रहे हैं।

हमें क्या ?

हम तो सोते रहेंगे, लड़ते रहेंगे, पदों के लिए मुकदमे करते रहेंगे। धन जोड़ेंगे, जनता को बहकाएंगे, लीडरी चमकाएंगे, माला पहनेंगे और दुनियां को उल्लू बनाएंगे।

अधिकारी बनेंगे आर्यसमाज के, काम करेंगे राजनीति का। अपने घर का, व्यापार का। लच्छेदार भाषणों पर जब दुनिया मरती है तो क्यों हम गधे हैं जो काम करें।

चूल्हे में जाए आर्यसमाज, भट्टी में जाए देश, हमें अपना घर बनाना है, दुनियां को बहकाना और अपने को चमकाना है।

यह मन स्थिति है आज के नेता की, व्याख्याता की, अधिकारी की। देश का सर्वस्व उजड़ रहा है। केरल, मद्रास, मैसूर, आंध्र, बिहार, मध्य प्रदेश सर्वत्र आग ऐसी लगी है कि जिसमें प्यारा भारत जल रहा है। पाकिस्तान का विष-धर फिर नानारूप में फुंकारने लगा है। विदेशी पादरी फिर अपनी हुंकार सुना रहा है। देश ज्वालामुखी के दहाने पर खड़ा है और हमारे नेताओं के पास इसका एक उपचार है भाषण। प्रस्ताव। सम्मेलन।

आर्यसमाज के वीरों का खून पानी बन चुका है। अधिकारियों को स्वार्थ ने अंधा कर दिया है। अन्यथा आज देश में फिर हजारों दयानन्द के अनुयायी एक साथ आर्य सेना सजा कर बढ़ती रावण-बाढ़ को रोकने के लिए खड़े दिखायी देते।

हम विदेशी पादरियों के षड़यन्त्र मिटाना चाहते हैं ?

— साम्प्रदायिक विषधरों के फन कुचलना चाहते हैं।

— स्वतंत्रता के शत्रुओं को नष्ट करना चाहते हैं।

— देश के हर क्षेत्र में सत्य धर्म की विजय पताका फहराना चाहते हैं।

हमारा आवाहन है उठो और काम करो। जहां जिसकी जितनी भी शक्ति है उससे काम करो। प्रभु के विश्वास पर काम करो। आगे बढ़ो विजय तुम्हारी होगी।

आर्यजन, देश का नेतृत्व करें।\
धर्म की व्याख्या करें।\
असत्य का संहार करें।\
सत्य का प्रचार करें।\
पाखंड मिटाएं।\
और ऐसी ज्योति जगाएं\
कि सारा देश\
वैदिक धर्म की जय\
के नाद से गूंज उठे।

हम पुकारते रहेंगें, बढ़ते रहेंगे,\
जलते हुए भी चलते रहेंगे।\
दयानन्द के अनुयायियो !\
तुम कब अपने गुरु के\
सच्चे शिष्य बनकर\
पाखंड खंडिनी पताका उठाओगे ?

क्रांति का मंत्र

क्रान्ति शब्द बड़ा मोहक है किन्तु शब्द के प्रभाव में भी शब्द का यथार्थ कितनों ने समझा है।

कोई तोड़ फोड़ को, कोई राज्य बदलने को, कोई केवल अपनी धाक जमाने को क्रांति का नारा लगाता है। किन्तु इतिहास जिस बात की पुष्टि कर रहा है उसमें क्रान्ति करने वालों ने कभी क्रांति का नारा नहीं लगाया।

आज हम जिस चौराहे पर खड़े हैं उसमें क्रान्ति का यथार्थ बोध संभव-प्रतीत नहीं हो रहा है। जीवन में उभरती

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पशुता को जो महत्व जाने अनजाने मिल गया है, उसका अन्त कहां, कब और किस रूप में होगा; इसकी भविष्यवाणी करनी आज सरल नहीं है।

फिर भी हम अनुभव करते हैं कि आज मनुष्य को जीवन-दर्शन के चिन्तन में मौलिक परिवर्तन की माँग पर विचार करना होगा। शरीर की सत्यता या आत्मा की अमरता का प्रश्न चिन्हलगा कर सत्य उत्तर का ज्ञान प्राप्त कर ही वह दिशा निर्देश प्राप्त करने में सक्षम हो सकता है।

युवा-वृद्ध सभी में उत्सुकता है आगे बढ़ने की, पर मंजिल का पता कितनों को है? जाने अनजाने सभी बढ़ रहे हैं, कहाँ जाकर रुकेंगे, यह तो चलने वालों को भी ज्ञात नहीं।

फिर भी हम आज की चकाचौंध के व्यामोह में जिस परिवर्तन का प्रयास कर रहे हैं वह मानवता के इतिहास को बदलने का संघर्ष है। हमारा संकल्प मनुष्य के ज्ञान-चिन्तन और स्पंदन की आधार रेखाओं को बदलने का है। हम मनुष्य को उस राह पर चलाने के इच्छुक हैं जिस पर चलने के लिए उसे मनुष्य योनि प्राप्त हुयी थी।

हमारी आवाज में आज वह गूंज उभरी नहीं है जो दिशा दिशाओं के अज्ञान को कंपित कर सके। समय आएगा, परिवर्तन होगा, और मनुष्य यह अनुभव करेगा, कि वह प्रभु का पुत्र है, अमर शाश्वत्। यह देह उसका साधन है और वह इस पर सवार महान् शक्ति पुंज दिव्य 'आत्मा'।

इस क्रांति के बाद अधर्म-पाप-अज्ञान की हस्ती धरती पर नहीं रहेगी। सब एक होंगे भाई की तरह प्रभु के बेटे।

हम जी रहे हैं इस क्रांति के लिए, और हमें विश्वास है कि हमारे जीवन में या मरने के बाद वह ज्योति जगेगी कि दिव्य देव दयानन्द का महान् स्वप्न पूर्ण होगा।

युग पुरुष दयानन्द, संसार का सबसे महान् पुरुष जिस लक्ष्य के लिए जिया था, मरा था, आओ हम और आप भी उसी पवित्र लक्ष्य पूर्ति के लिए पूरे बल से संघर्ष करें। विजय सत्य की होगी यही विश्वास हमारी शक्ति है।

पोस्टर मंगाइये !

हमने आर्यसमाज स्थापना शताब्दी मनाने के लिए जो कार्यक्रम बनाया है उस में से एक है। पोस्टरों द्वारा प्रचार—

पहला पोस्टर सत्यार्थप्रकाश के संबंध में तैयार कराया गया है। और दूसरा आर्यसमाज के दस नियमों का। आर्यसमाज का संदेश फैलाने के लिए यह अत्यन्त प्रभावपूर्ण कार्य क्रम है। पोस्टर २०) सैकड़ा की लागत पर वितरित किए जाएंगे। जबकि लागत बहुत अधिक आ रही है।

आप अगर दोनों पोस्टर ५००-५०० मंगा कर भी नगर में लगवा देंगे तो नगर में आर्यसमाज के विचारों की धूम मच जाएगी।

बढ़िया कागज, सर्वश्रेष्ठ दुरंगी छपायी से पोस्टर अभियान आरंभ कर दिया है। आपके आर्यसमाज का नाम लिखने का स्थान भी छोड़ दिया गया है हमारा आग्रह है कि आगे बढ़ने के लिए आप भारी संख्या में इन्हें मंगाइए—

जोश उभारिए और आगे बढ़िए

अराजकता की छाया

देश पर आज अराजकता की छाया छा गयी है। प्रतीत हो रहा है कि जैसे शासन की व्यवस्था छिन्न भिन्न होकर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बिखर गयी है। स्वार्थों की होड़ ने मनुष्य को पशु बना कर राष्ट्र हित की भावना को स्वप्न बना दिया है।

आज संक्रान्ति काल है। निर्माण की ओर से निराशा और ध्वंस की अनवरत प्रक्रिया का चक्र अविराम घूम रहा है। ऐसे में देश भक्त और देश-द्रोही आमने-सामने खड़े दिखायी पड़ने वाले हैं।

यह परीक्षण की घड़ी है, अतः सभी देश भक्त अपना कर्त्तव्य पालन करें। जहां भी वे हैं, अडिग धैर्य और मनोबल से स्वस्थ-सबल राष्ट्र की कामना के लिए त्याग की अनुभूति दें।

स्वार्थ में व्यक्ति उभरता है तो राष्ट्र मिटता है तो व्यक्ति तबाह हो जाता है। इस सत्य को भुला हमारे कर्णधार चल रहे हैं जिस का परिणाम प्रत्यक्ष है। आज आवश्यकता है कि हम सभी संभलें और राष्ट्र के लिए अपने छोटे-छोटे स्वार्थों को भुला दें।

सादगी से महंगायी का मुकाबला करें। कठिन श्रम से उत्पादन बढ़ाएं और अगर शासक वर्ग को बुद्धि मिल जाए कहीं से, तो वह भोग की प्रक्रिया को त्याग में बदल देश का भविष्य स्वर्णिम बना सकता है।

जो भी हो हम अपने अपने मन को सुदृढ़ बनाएं और तूफान से घबराएं नहीं—आज नहीं तो कल। आशा का सूरज अवश्य उगेगा—

पूर्व और पश्चिम

पूर्व और पश्चिम—दो विभिन्न संस्कृतियों के प्रतीक बन गए हैं। पूर्व का अर्थ बन गया है सत्य धर्म-प्राचीन-और अध्यात्म। पश्चिम का अर्थ है विज्ञान--भोग और शरीर के सुख साधन। पूर्व प्रातः की किरणों के समान प्रकाश बखेरता आता है। पूर्व के सिद्धान्त प्रकाश की आधार शिला हैं। पश्चिम रात की अंधकार की प्रतीक्षा करता है।

पूर्व का सन्देश है जल्दी उठो, जल्दी सो जाओ। पश्चिम कहता है, देर से उठो और आधीरात के बादसोओ। इस आदत से पूर्व और पश्चिम का सारा दर्शन प्रगट हो जाता है।

पश्चिम विज्ञान के बल पर शरीर को सुख पहुँचा आनन्द की खोज करता है। पूर्व विज्ञान द्वारा शरीर को उन्नत कर सत्य 'आत्मा' के विकास के लिए प्रयत्नशील रहता है।

सूरज उगता है, रोशनी फैलती है तो सभी प्रसन्न होते हैं। ऐसे ही पूर्व का सन्देश जहां भी पहुँचेगा सभी का मन प्रसन्नता से भर देगा। अभी तो पूर्व का प्रकाश अंधेरे में बन्दी है। सूरज को बादलों ने ढक रखा है। हम इन बादलों को हटा कर आनन्द की ज्योति धरती पर बखेरने के लिए पूर्व का सन्देश सभी तक पहुँचाने का यत्न कर रहे हैं।

शान्ति—आनन्द और उन्नति के लिए आओ—हमारा निमन्त्रण स्वीकार कर सूरज की, सच्चायी की रोशनी फैलाने में हमारा साथ दो।

सादगी : फैशन

सादगी का अर्थ है अपनी आवश्यकताएं कम करना। जिस व्यक्ति की आदतें जितनी सादी होंगी वह उतना ही अधिक आनन्द अनुभव करेगा।

आज की दुनियां में हर आदमी ने अपनी जरूरतें बहुत बढ़ा ली हैं। शरीर को अधिक से अधिक आराम पहुँचाने की दौड़ में वह Over busy हो गया है। कभी कभी तो ऐसा लगता है कि मनुष्य मशीन बन गया है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सादगी मन को निर्मल करती है और फैशन मन के अस्तित्व को शरीर सजाने की तरफ मोड़ देता है। फैशन का कहीं अन्त नहीं, जितना फैशन उतनी दौड़ और फिर परेशानी।

हर आदमी सुख चाहता है और शांति भी। इसके लिए पहला पाठ है सादगी का। अपनी जरूरतें कम करो। फिर देखो तुम अपने को कितना ऊंचा और सुखी अनुभव करोगे।

गरीबी-अमीरी का संघर्ष और दिन रात भौतिक सामान इकट्ठा करने की मनोवृत्ति दोनों एक साथ चलती हैं। हर आदमी अगर अपनी जरूरतें पूरी करने के बजाय अपने को सजाने का प्रबन्ध करे तो यही दुनियाँ सचमुच का स्वर्ग बन सकती है।

हम इस समय केवल परमात्मा के बल पर संसार में फैले हुए अज्ञान को मिटाने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। धर्म के नाम पर पाप और अज्ञान और ज्ञान के नाम पर मौत के रास्ते पर चलने की शिक्षा को रोक कर हम संसार में परमात्मा के सच्चे ज्ञान का प्रचार कर रहे हैं।

हमारा विश्वास है कि संसार के सबसे पुराने और महान् ग्रंथ 'वेद' को जब तक दुनियां के हर घर तक नहीं पहुँचाया जाएगा, जब तक सारी दुनियां के लोग परमात्मा के बेटे बनकर उसके दिखाए रास्ते पर नहीं चलेंगे दुनियाँ से युद्ध-घृणा और संघर्ष का वातावरण समाप्त नहीं होगा।

हम अज्ञान-अन्याय और अभाव को मिटाने के लिए लड़ रहे हैं। इस महान् कार्य में हम दुनियां के हर आदमी को जो परमात्मा का बेटा बनकर जमीन पर रहना चाहता है, सहयोग के लिए पुकारते हैं।

'वेद' अर्थात् सच्चे ईश्वर के ज्ञान के प्रचार के लिए सभी उदारता पूर्वक हमें अधिक से अधिक सहयोग दें, ताकि ज्ञान का यह पवित्र आन्दोलन सफल हो सके।

सब से प्यार करो

अपने से तो सभी प्यार करते हैं,
अपने लिए तो सभी जीते हैं,
किन्तु सच्चा मनुष्य वही है,
जो दूसरों के लिए जिए और मरे।
मुसीबत में हर आदमी के काम आओ,
बिल्कुल उसी तरह
जैसे अपने परिवार के
भाई-बहनों और बच्चों के
काम आते हो।
अपने परिवार का घेरा
छोटा मत रहने दो,
उसे बड़ा बनाओ,
इतना बड़ा
कि यह सारी धरती
तुम्हारा अपना घर बन जाए।
प्यार का मंत्र
जीवन का मीठा संगीत है।
प्यार का गीत.
स्वर्ग की सुन्दर सीढ़ियां है।
जहां प्यार है, वहां स्वर्ग है।
स्वर्ग अपने आस पास बखेर दो।
जीवन छोटा है
पर वह सुन्दर बन सकता है।
प्यार-सेवा और बिना स्वार्थ
के सभी के दुःख दूर करने से।
इस सच्चायी को समझो
और बिना भेद-भाव के
सभी से प्यार करो।
प्यार देने से प्यार मिलता है—
सूरज की पहली किरण
जैसे सभी का प्यार पाती है,
ऐसे ही तुम भी सभी
का प्यार पाकर देवता
बन सकते हो।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इतिहास बदलने का संकल्प

संसार का सारा इतिहास बलिदानों से लिखा गया है। जो अपने सिद्धान्तों के लिए मरा है वही अमर हुआ और जो जीने के लिए बेचैन हुआ वह मर गया।

आज भी यही स्थिति है। संसार का ज्ञान-विज्ञान-विचार सभी अपने अपने प्रवल प्रवाह में दौड़ रहा है। सभी के पास अपनी मान्यताओं के पोषण की प्रबल शक्ति है। धन है, साधन है, मस्तिष्क है और विचारों का साम्राज्य स्थापित करने की होड़ में दुनियां दौड़ रही है!

इस दौड़ में आर्यसमाज भी शामिल है। लेकिन आज हर हालत में पिछड़ा हुआ है। इस का नेतृत्व ऐसे व्यक्तियों के हाथ में आ गया है जिन के पास न समय है, न बुद्धि, न शक्ति। हर तरह से अयोग्य व्यक्ति आज आर्यसमाज संगठन के सूत्र-धार बन कर केवल लकीर पीटने में लगे हैं। सत्य सिद्धान्तों के होते हुए भी कोई बताए तो सही आज हम कहां खड़े हैं? सच और कड़वा सच यह है कि दुनियां के विचारों के संघर्ष में आर्यसमाज की शक्ति उन छोटे-छोटे मतों से भी पिछड़ गयी है जिनका जन्म ही कल हुआ था?

आर्यसमाज स्थापना शताब्दी मनाने का जो ढंग चल रहा है उसे देख कर तो प्रत्येक आर्यसमाज के हितैषी को रोना आएगा। आखिर क्या हो गया है हमें कि इस स्वर्णिम अवसर को भी हम केवल लकीर पीट कर ही खो देना चाह रहे हैं।

आर्यसमाज के प्रत्येक हितैषी से हमारा आग्रह है कि वह निष्पक्ष भाव से हमारे विचारों पर चिन्तन करे, और अगर हम कहीं गलती पर हों तो हमें बताए अन्यथा सोचे कि अब हमें करना क्या चाहिए?

आज ईसाइयत, इस्लाम, कम्युनिज्म, नास्तिकता और भोगवाद यह पांच प्रमुख विचारधाराएं हैं जो संसार पर अपना प्रभाव जमा रही हैं। इन के अति-रिक्त छठा गुट पाखंडियों का है जो धर्म, ईश्वर और योग के नाम पर जन मानस को वहका रहा है।

आर्यसमाज को जीवित रहना है और आगे बढ़कर इतिहास में अपना नाम करना है तो इन छः मानवता के प्रवल शत्रुओं के विरुद्ध युद्ध-घोषणा करने का साहस उसे जुटाना होगा। और किसी भी कारण से यदि इसके लिए हम उद्यत नहीं होंगे तो फिर मरने के लिए तैयार रहना होगा।

हम तो उसी आर्यसमाज को आर्य समाज मानते हैं और उसी आर्यसमाज के हम सैनिक हैं जो इन छहों के विरुद्ध एक साथ युद्ध करने के लिए, युद्ध स्तर पर कार्य करने के लिए शंखनाद कर सके।

पर ऐसा आर्यसमाज कहीं दिखायी नहीं देता, ऐसे आर्य कहीं मिल नहीं पा रहे······कभी-कभी तो मन सोचता है कि क्या वसुन्धरा वीर-शून्य हो गयी? आर्य रक्त का प्रवाह क्या इतना गंदला हो गया कि उन का रक्त नहीं खौलता?

उत्तर देना हमारे बस में नहीं है, देश के, विदेश के, किसी भी आर्य के नेत्रों के समक्ष ये पंक्तियां पड़ें, तो उत्तर उसी को देना होगा।

हम तो यही कह सकते हैं कि आज या फिर कभी नहीं? अज्ञान को मिटा दो, अन्यथा वह तुम्हें मिटा देगा। अधर्म का संहार करो वरना वह तुम्हें मार देगा।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हमारे नेताओं को आपस में लड़ने की आदत पड़ गयी है। उन का लक्ष्य आर्यसमाज द्वारा संसद् भवन तक पहुँचना रह गया है। आर्यसमाज के लिए कोई मरने को, जलने को तैयार नहीं।

हमारी प्रार्थना है कि शरीर में आर्य रक्त हो तो वह अग्नि प्रज्वलित करो कि देश-विदेश का सारा अज्ञान एक साथ धू-धू कर जल उठे। पापों की गद्दी कांपे और अधर्म की हड्डियां तक राख हो जाएं।

हमारा मन पुकारता है पर कोई पुकार सुनने को तैयार नहीं। आर्यसमाजों के प्रधान और मंत्री सोए पड़े हैं। उनकी श्रद्धा न ऋषि दयानन्द के प्रति दीखती है, न सत्यार्थ प्रकाश के प्रति। वेद के प्रति तो हमारी उदासीनता सीमा लांघ गयी है, तो बताओ क्रांति का संचालन कौन करेगा?

हम अनुभव करते हैं कि हम पत्थरों को उठाना चाह रहे हैं। पर फिर भी इसलिए बार-बार सिर पटकते हैं कि शायद कहीं किसी कोने में ऋषि दयानन्द के सच्चे अनुयायी बैठें हों, और वे हमारा निमंत्रण स्वीकार कर सकें।

सर्वस्व स्वाहा कर ऋषि दयानन्द की विजय के लिए जीवन की आहुति देने वाले १० व्यक्ति भी जिस दिन इकट्ठे होकर आर्य सेना सजाएंगे, उस दिन पापों का सिंहासन डोल उठेगा।

इतिहास बदलना है, दुनियां के सारे भ्रांत विचारों को समाप्त करना है तो बलि पथ पर चलना होगा, मरना होगा, इसलिए कि ओ३म् की पावन पताका प्रत्येक हृदय-मंदिर पर फहरा सके। हम पूछते हैं वह दिन कब आएगा?

कब दयानन्द के सैनिक धरती पर वेदों का डंका बजाते हुए विश्व विजय के लिए अभियान करेंगे?

"जन-ज्ञान" के दो नए सदस्य बनाकर उनका शुल्क

केवल २०) भिजवाइए

१५ अक्टूबर १९७३ तक "जन-ज्ञान" के सदस्य बढ़ाने का अभियान हम आरंभ कर रहे हैं। अपने मान्य सदस्यों से हमारी प्रार्थना है कि वे कम से कम २ नए सदस्य बनाकर उनका धन २०) एक साथ भिजवाएं। ताकि हम आगे बढ़ सकें।

पुराने सदस्य अपना शुल्क १२) ही भेजें

—संपादक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्यसमाज स्थापना शताब्दी

मनाने के लिए

अपने क्षेत्र में अधिक से अधिक

प्रचार-पोस्टर लगवाइए

अभी दो पोस्टर तैयार हैं

१. सत्यार्थ प्रकाश के सम्बन्ध में—

२. आर्य समाज के १० नियमों का

पोस्टर बड़े साइज में अत्यन्त बढ़िया कागज पर दुरंगे छापे गए हैं। केवल कागज ही १८ पैसे का है। छपायी पर १० पैसे व्यय आया है फिर भी हम

केवल २०) सैकड़ा दे रहे हैं।

आर्यसमाज के नियमों का पोस्टर तिरंगा छपा है। आर्ट पेपर पर पत्ती लगा हुआ ५०) सैकढ़ा

यत्न कीजिए कि आपके क्षेत्र की दीवारें इन पोस्टरों से पाट दी जाएं।

आज ही आदेश भेजिए
व्यवस्थापक—दयानन्द संस्थान
नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेद भाष्य प्रकाशन में आप इस तरह भी सहायक हो सकते हैं

१. अपनी ओर से किसी भी मित्र या रिश्तेदार को वेद भाष्य प्लास्टिक कवर सहित उपहार में भिजवाइए। हम डाक व्यय २०) व भेंट मूल्य १०१) लेकर आप की ओर से यह अनमोल उपहार भेज देंगे।

२. यदि किसी कारण से आप चारों जिल्द मंगवाने में असमर्थ हैं तो वेद की एक-एक जिल्द मंगवाकर किसी भी अवसर पर उपहार दीजिए इसके लिए ३१)+५)=कुल ३६) भेजें। विशेष उपहार के लिए आर्ट पेपर पर छपा सुन्दरतम उपहार ५१)+६)=५७) में॥

३. प्रत्येक व्यक्ति कम से कम २५) दान में अवश्य भेजें। यदि जन ज्ञान के सभी सदस्य यही कृपा करते तो समस्या सुलझ जाती। जिन्होंने इस ओर ध्यान नहीं दिया वे २५) तुरन्त भेजने की कृपा करें। ताकि यज्ञ निर्विघ्न पूर्ण हो।
वेद भाष्य यज्ञ निर्विघ्न संपूर्ण हो इस के लिए प्रयत्न करना प्रत्येक वेद भक्त का कर्तव्य है।

यज्ञ की सफलता के लिए जो कुछ भी कर सकते हों करें—यही प्रार्थना है—

—भारतेन्द्र नाथ

१०१) देकर अपने किसी मित्र को वेद उपहार में दीजिए

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अपने प्रभु से !

मेरे भगवान्, मेरे इस शुष्क हृदय में बहुत दिन से बरसा नहीं हुई, दिन पर दिन बीत रहे है। क्षितिज भयावने रूप में नंगा पड़ा है—हलकी पतली से पतली रेखा भी नहीं दिखाई देती। सुदूर प्रान्त में भी कहीं दो चार ठंडी बौछारें नहीं पड़ रहीं। कोई भी नव नीर वर्षा का हरियाला संदेश नहीं सुनाता है।

यदि तेरी यही इच्छा है तो मृत्यु से अन्धकारमय क्रुद्ध झंझा-वात को भेज दें और विजुली के चाबुक से मार-मार कर सारे आकाश को कंपा दे (थर्रादे)।

किन्तु वापिस बुला ले, मेरे प्रभु ! इस सर्वव्यापी मौन गर्मी को वापिस बुला ले—यह बड़ी ही स्थिर तेज और क्रूर हैं। और दिल को दारुण नैराश्य से जलाये दे रही है।

पिता के क्रोध से पीड़ित बालक पर जिस प्रकार माता की आँसू भरी आंखें झुक जाती हैं, उसी प्रकार ऊपर से अपनी करुणा और प्रसाद के बादलों को नीचे जमीन पर झुकने दो।

हे प्राणेश्वर,

दिन रात मेरे अंग-अंग को तुम छू रहे हो, यह बात सदा ध्यान में रखकर मैं अपने शरीर को सदा पवित्र रखूंगा।

हे परम-ज्ञान !

मेरे मन में तुम बसे हुए हो, यह बात हमेशा याद रखते हुए मैं अपने सारे ध्यान और सारी चिन्ताओं से सारी झूठों की सारी कोशिशें कर दूर हटा दूंगा।

मेरे हृदय पर तेरा अटल आसन बिछा है, यही मन में रख कर मैं सारे कुटिल द्वेषों और सारे अमंगलों को नियन्त्रित करूंगा और अपने प्रेम को पूरी तरह विकसित और दोषहीन बना दूंगा।

सम्पूर्ण कर्मों में तेरी ही शक्ति से सिद्धि होती है, इसी को सार समझ कर सारे कर्मों में तेरा ही प्रचार (अभिव्यक्ति) करूंगा।

—रवीन्द्र नाथ ठाकुर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दृढ़ संकल्प : गायत्री जप

श्री पूज्यपाद महात्मा प्रभु आश्रित जी

ओ३म् अवधीत्कामो मम ये सपत्नाः उरुं लोकमकरन्मह्यमेधतुम् ।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रो मह्यं षडुर्वीर्घृतमा वहन्तु ॥ अथर्व० ९।२।११

इस मन्त्र में आत्म-संकल्प का वर्णन है। प्रभु की ईक्षण शक्ति का नाम संकल्प है। यह आत्मा की निजी सम्पत्ति है। आत्मा परमात्मा का अमृत पुत्र है। प्रभु सब शक्तियां अंश मात्र में मनुष्य को देता है। जैसे सूर्य बनाया। हमारे शरीर में आंख सूर्य का काम करती है। जिह्वा में जल का अंश है, नासिका में पृथ्वी को स्थान दिया। कानों में आकाश का रूप दिया। वायु को त्वचा में रख दिया। शरीर छोटा है। प्रभु बड़ा है। देवताओं को भी अपेक्षाकृत बड़ा बना दिया। हम उसके वास्तविक स्वरूप को समझें। हर एक कार्य इसी रीति से करें जिस रीति से देवता करते हैं।

प्रभु बिना औजारों (उपकरणों) के ब्रह्मांड को रचता है। हम इस ईक्षण को अपने अन्दर बसा लें। हमारी आत्मा में जो ईक्षण (संकल्प) समाया हुआ है वह उतना काम करे, जितना प्रभु करता है। ज्ञान बिना मैं प्रभु जितना कार्य नहीं कर सकता। प्रश्न यह है कि ऐसा कौन-सा काम है जो हम अंश मात्र में कर सकते हैं। प्रभु ने सृष्टि की उत्पत्ति की। हम भी प्रजा उत्पन्न करते हैं। पर हमें पता नहीं कि कितने रज वीर्य के जोड़ से उत्पत्ति हुई। नाम हमारा है पर काम प्रभु का है।

पशु भी सृष्टि में बने। पर वह हमारा माता-पिता है पशुओं का नहीं। उनका गुरु भी नहीं। मेरे में गुरु रूप में बसा है। उन पशुओं के लिए प्रभु राजा रूप में है। पर हमारे लिए पिता, गुरू और राजा रूप में।

प्रभु की सम्पत्ति का मालिक मनुष्य है। गाय के लिए घास तथा कुत्ते के लिए रोटी चाहिए। पर संसार का सुख मनुष्य के लिए है। शेर राजा है पर प्रजा भक्षण के लिए है। हमारा राज्य रक्षण के लिए है।

माता-पिता के समान प्रभु भी खाद्य पदार्थ देता है। वायु को सर्वत्र फैला दिया। हर क्षण प्रकाश दिया। माता-पिता रूप में सब कुछ देता है।

वह गुरु भी है—ज्ञान देता है, पशुओं को नहीं देता, क्योंकि वे टेढ़े जाते हैं। वह राजा है—कर्म फल देता है—पुत्र के नाते। मैं सुपुत्र बनूं—माता-पिता के नाम को उज्ज्वल करूं। माता-पिता में दया है। मैं दयालु बनूं। अपने परिवार को तो सब पालते हैं। यह नमूना है। जिसको तुम अपना समझते हो उसकी पालना तुम कर सकते हो और दूसरों की नहीं। पर हमें सबको अपना समझना चाहिए। यह ज्ञान तब होगा जब हम उसे वास्तविक पिता समझेंगे। इसमें हमारा आस्तिकपन छिपा हुआ है। माता-पिता तो थोड़ी सच्ची सेवा से भी प्रसन्न हो जाते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वह गुरु है—ज्ञान देता है बंधनों से छुड़ाता है – मैं स्वयं बंधता हूँ।

प्रभु बेलाग है। हम भी निर्लेप बनें। हजारों मरते हैं पर हमें दुःख नहीं होता क्योंकि वे हमारे नहीं, ऐसा समझते हैं। मैं सबको अपना समझूं या किसी को न समझूं। परमेश्वर सब में है, सबका है और किसी का भी नहीं। मेरा काम है कि मैं किसी का तिरस्कार न करूं।

मनुष्य सबका राजा है—राजा का कार्य है न्याय करना। मैं न्याय करूं सब पर दया करूं। प्रभु सत्य करता है, मैं सत्याचरण करूं।

यह तब है जब मेरी संकल्प शक्ति जाग जाये।

मोह मुझे गिराने वाला है। अर्जुन जैसा वीर, शस्त्रधारी, युद्धक्षेत्र में मोह में व्याप्त हो गया किकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। राज्य की भी अनिच्छा है। उससे धैर्य को छोड़ बैठा। अधीरता अज्ञान को पैदा करती है। इसके कारण एक वीर भी भीरु बन गया। हम सब इससे बंधे है। ८० वर्ष तक की आयु में भी लोग परिवार को नहीं छोड़ते। संकल्प शक्ति का काम है निरासक्त करना, सब बाधायें स्वयं ही भाग जाती हैं। इसके जागने से कोई शत्रु सामने नहीं आता। मृत्यु के पश्चात् तो सूक्ष्म शरीर साथ रहता है। पर मुक्तावस्था में संकल्पमय शरीर साथ रहता है। उसमें २४ शक्तियां रहती हैं।

इस संकल्प शक्ति को जगायें कैसे ? इतनी शक्तियों को रखते हुए भी न जागे तो हमारा दोष है। बच्चे में कामादि सब सोये पड़े होते हैं। बड़ा होने पर स्वयं बढ़ जाते हैं। उत्तम २ पदार्थ खाने से यह काम, क्रोध विकारों को उत्पन्न होते हैं।

माघ मास में स्वयमेव पशुओं में कामवृत्ति जग जाती है। अतः शास्त्र कहते हैं कि सात्त्विक अन्न खाओ। यह शक्तियां तब प्रादुर्भूत होती हैं जब हम अपनी वृत्तियां संसार से जुटाये रखते हैं। हमारा अन्नमय कोष दोषों से भरा है। हम शरीर को बढ़ाने वाले पदार्थ खाते हैं। शरीर के लिए खाते हैं। शरीर शरीर है। अतः हमारा अन्नमय कोष भी जड़ हो जाता है।

वैज्ञानिकों ने एक्स-रे बनाया। अन्दर का चित्र ले लेते हैं पर मानसिक कुवासनाओं का चित्र किसी ने भी नहीं बनाया। शरीर के विकारों को तो मनुष्य बना देता है। उन वैज्ञानिकों ने समाधि तो लगाई। अन्तर्ध्यान तो हुए पर प्रकृति में समाधि लगाई न कि प्रभु में।

जर्मनी ने एक आला (यन्त्र) बनाया जिसमें रेशमी धागे से लट्टू लटका होता है। उसकी नोक को अण्डे के साथ छुआ दो, वह नर, मादा को बता देता था। उसे Eggs tester कहते हैं। बुद्धि तो पूर्ण है पर हमें प्रभु ने अंश मात्र दी। आजकल के सब विध्वंसक आविष्कार आसुरी बुद्धि की उपज हैं।

ऋषि दयानन्द जी बैठे थे। उनको ध्यान आया कि अमुक पण्डित जी आ रहे हैं अब तो वे स्टेशन से चल दिये हैं। बैलगाड़ी में बैठे हैं। एक बैल चितकबरा है एक सफेद है। बिल्कुल तथ्य निकाला वह दैवी बुद्धि है। दैवी बुद्धि का प्रमाण तो वेदों में अनेक स्थलों पर है। मेंढकों से वर्षा ज्ञान। ऋग्वेद में एक सूक्त है जिससे आंधी तूफान का पता लग रहा है। इसको तब जान सकते हैं जब योगी बनें। योगी तो संकल्प मात्रिक दृष्टि से पतित को पवित्र बना देते हैं। योगी के पास आध्यात्मिक ज्ञान है। वह तब उसे जान लेता है जब उस शीशे को साफ़ कर लेता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रभु को किसी सांसारिक पदार्थ की आवश्यकता नहीं। प्रभु तो भाव के छुक हैं। सेवा नहीं। सेवा से मुझे वाहवाही मिलेगी।

"बाहुभ्यां यशो बलम्" हम सदा यश बल मांगते हैं। हम अनित्य बल मांगते लोगों के किये यश से अशान्ति, पर अन्दर के यश से शान्ति मिलती है। हम यों में आसक्ति को छोड़ दें।

इन शत्रुओं पर विजय पावें। पाठ पूजा हम इसलिए करते हैं कि यह विकार जायें। यदि इस जीवन में नहीं जीते गये तो पीछे भी नहीं जीते गये थे क्योंकि हैं। फिर आगे कैसे जीते जायेंगे? यह विज्ञान तो नाश की ओर ले जा रहा है। न्त तो वास्तविक ज्ञान से मिलेगी।

इस आत्मिक अणु (एटम) बम्ब का नाम है गायत्री। इससे विजय पाई विषय मारा नहीं। अधीन कर लिया। हिंसा नहीं की। उसे बैल की तरह नपुंसक दिया। उन विषयों को मार तो सकते नहीं, क्योंकि अनादि काल से चले आ हैं।

इस गायत्री के २४ अक्षर हैं। इसके सिद्ध करने से ईक्षण आता है। यही २४ र भुक्ति और मुक्ति को देते हैं। यही संकल्प की २४ सिद्धियों को देते हैं, जप तो ी सीढ़ी है। ध्यान होने पर जप दूर जाता है। ध्यान से पहले जप करना आव- क है।

'भूः' प्राण दाता है। 'भुवः' दुःखहर्ता है। 'स्वः' सुख स्वरूप है। यह तीनों सुख दे सके वह 'ओ३म्' हैं। बच्चा तो जन्मते ही वां वां (ओं ओं) करता है पशु तो कुछ नहीं लाया। हम तो प्रभु को साथ लाए थे। इसलिए प्रभु ने हमें निज नाम दिया।

भूः-पृथ्वी, भुवः-अन्तरिक्ष, स्वः-आकाश। 'भू' का अर्थ है ज्ञान, 'भुवः' कर्म, 'स्वः' सना। भूः से उत्पत्ति, भुवः=स्थिति, स्वः=प्रलय। इन गुणों से युक्त उस प्रभु र लें उससे सम्बन्ध जोड़ लें।

सम्बन्ध भी दो प्रकार का है। स्त्री ने तो अर्पण भाव से सम्बन्ध किया। सब पदार्थों की मालिक बन गई। माता-पिता का त्याग किया।

ऐसे ही जो यह भगवान् को वर लेता है, वह सब सम्पत्ति का स्वामी बन ा है। दूसरा सम्बन्ध है आश्रित भाव। भर्गो देवस्य धीमहि। उस संबंध से हमारे र्ण पाप भुन जाते हैं। संकल्प जगने से सब पाप भुन जाते हैं। कच्चा ज्ञान परि- वस्था में पहुँच जाता है। उससे हमारी बुद्धि स्थिर हो जाती है। वह भगवान मार्ग प्रदर्शन करते हैं।

अब जपें कैसे? इन पदों को कैसे ठहरायें। शरीर के कौन-से भाग से जपें? र में तो पाप नहीं उठता। यह तो मन बुद्धि में आते हैं। विधिहीन यज्ञ ताम- क होता है। इससे क्रोध, अहंकार बढ़ जाता है। हमारे में शब्द समाया नहीं। जाये तो पाप दग्ध हो जावे। 'भर्गः' के न टिकने से पाप नष्ट नहीं होता। हमारी तु तथा आसुरी विद्या तो बहुत है पर ज्ञान में हम कच्चे हैं। हमें तो ऊंचे २ ही ना पड़ेगा। इस मार्ग में जप आवश्यक है। ध्यान की तो सातवीं सीढ़ी है। जप धि से करें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शास्त्रकारों ने लिखा है कि सन्धिकाल में जप करें। हम इच्छानुसार करते हैं। वहां करें जहां देवता हमारी सहायता करें। जहां का वायुमण्डल ठीक हो। गंदे वातावरण में करने से पाप सामने आकर तंग करते हैं। शुद्ध स्थान पर दैवी शक्तियां विचरती हैं। वहां ध्यान टिक जाता है।

घर में भी करो तो जब दोनों नासिका चलती हों तो ध्यान तुरन्त टिक जाता है। जब दिन रात बराबर होते हैं जैसे २३ सितम्बर। उस दिन विशेष रूप से तप, दान, पुण्य करो। जैसे प्रकृति ने तम, प्रकाश को एक कर दिया। ऐसे ही उस प्रकृति को आजमाओ।

इसलिए अपनी संकल्प शक्ति को जगाने के लिए सन्धिकाल के दिन नाभि-पर्यन्त जल में खड़े होकर जप करने से नीचे के सब विकार दूर हो जाते हैं और सीधा (Direct) सम्बन्ध हो जाता है। ऐसा साधकों का अनुभव है।

परिभाषाएँ

स्वतन्त्रता

ईश्वर उन्हें ही स्वतंत्रता प्रदान करता है, जो उससे प्रेम करते हैं और जो उसकी रक्षा करते हैं। —डेनियल वेब्स्टर

भय

भय से बढ़कर कोई भयानक चीज नहीं। —सर फ्रांसिस बेकन

बुद्धिवाद

१. बेवकूफ प्रशंसा करते हैं और बुद्धिमान ग्रहण करते हैं।

२. बेवकूफ मूर्ख की प्रशंसा कर अपना काम बना लेते हैं।

खाना

मुझे यह वता दो, कि तुम क्या खाते हो, और मैं तुम्हें यह वता दूंगा कि तुम क्या खाते हो।

ब्रलएराट सेवेरिन

सौन्दर्य

सौन्दर्य ग्रीष्मकालीन फल है, जो कुछ देर में खराब हो जाते हैं और टिकाऊ नहीं होते।

—सर फ्रान्सिस बेकन

सौन्दर्य शक्तिशाली होता है, किन्तु पैसा सर्व-शक्तिमान होता है। —जॉन रे

दिल

एक नेक दिल विश्व के समस्त मस्तिष्कों से अच्छा है। —लॉर्ड लेटिन

[कुमारी अविनाश द्वारा संकलित]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पाखंड खंडन

लेखक—श्री पं० शिवदयालु जी

ब्रह्माकुमारी मत दर्पण

सम्प्रदाय प्रवर्तक

ब्रह्माकुमारी सम्प्रदाय के प्रवर्तक का नाम श्री लेखराज जी था जिनको प्रायः दादा के नाम से ही पुकारते थे। दादा एक सम्पन्न धनाढ्य परिवार के व्यक्ति थे। बम्बई में इनकी हीरे जवाहरात की दूकान रही है। आप स्वभाव से ही रंगीले और विलास-प्रिय थे। बम्बई में इनकी सर आगाखाँ के साथ मैत्री थी। सम्भवतः उन्हीं से दादा जी ने यह प्रेरणा प्राप्त की कि किस प्रकार अन्ध-विश्वासों में फँसी भोली-भाली जनता को अपने वश में किया जाय और बिना किसी तप-त्याग और संयम के एक महान् धार्मिक नेता बना जाय। अतः दादा जी ने किसी हठयोगी गुरु के द्वारा शिक्षा-ग्रहण करनी आरम्भ कर दी, और त्राटक की साधना का पूरा-पूरा अभ्यास किया; जिसके द्वारा सम्पर्क में आने वाले निर्बल-मस्तिष्क पुरुषों को तथा भावना प्रधान युवतियों को अपने वश में किया जा सके। अपने अपलक नेत्रों से दूसरों के अपनी ओर लगे नेत्रों पर प्रभाव डालकर उनको सम्मोहित किया जा सके। इस प्रकार दादा जी सम्मोहन एवं उच्चाटन नामक हठयोग की सिद्धियों से युक्त बनकर कार्यक्षेत्र में उतरे।

बम्बई में अपना कारोबार बन्द कर आपने कराची में डेरा जा जमाया और ओ३म् मंडली की स्थापना की, और तथाकथित ब्रह्मज्ञान और योग की स्थापना की। शिक्षा के बहाने चेला-चेली बनाना आरम्भ कर दिया। आपका विशेष प्रयत्न चेली बनाने की ओर ही रहा। अनेक अविवाहित कुमारिकाएं इनके आश्रम में दीक्षित होने के लिए आने लगीं। कुछ विवाहित देवियाँ भी अपने-अपने पतियों को त्याग कर आश्रम में रहने लगीं, और दादा जी द्वारा हठयोग की क्रियाएं सीखने लगीं। इस समय दादा जी की आयु ४० वर्ष के लगभग थी, दादा जी स्वभाव से ही रंगीले और विलास-प्रिय रहे। अतः उनके आश्रम में अनैतिकता का वातावरण उत्पन्न हो जाना अस्वाभाविक न था।

ओ३म् मण्डली की स्थापना के कुछ काल उपरांत जनता में उसके प्रति घृणा और रोष उत्पन्न हो गया। प्रतिष्ठित परिवारों की देवियाँ अपने पतियों और पुत्रों को त्याग कर तथा अविवाहित युवतियाँ अपने माता-पिता को त्याग कर जब दादा लेखराज की चेली बन उनके केलिसदन में रहने लगीं, तो रोष व घृणा का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था। आर्यसमाज कराची ने अन्य नागरिकों के सहयोग से ओ३म् मण्डली के विरुद्ध आन्दोलन खड़ा किया। स्थान-स्थान पर विरोध सभाएं होने लगीं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कराची के अनेक गण्य-मान्य नेताओं का सहयोग प्राप्त किया गया। आर्यस अनेक प्रमुख कार्यकर्त्ताओं का शिष्ट-मण्डल श्री साधु टी० एल० वास्वानी जी मिला और इस आन्दोलन में उनका सहयोग उपलब्ध किया। साधु वास्वानी ने ओ३म् मंडली के भ्रष्टाचार के विरुद्ध आन्दोलन में अपना सहयोग प्रदान आंदोलन के साथ-साथ ओ३म् मंडली के विरुद्ध कानून का दरवाजा भी खट गया। परिणामस्वरूप ओ३म् मंडली पर प्रतिबन्ध लगा और दादा जी को छोड़नी पड़ी; और अपना डेरा तम्बू उखाड़ना पड़ा।

भारत-विभाजन के उपरान्त श्रीमान् जी ने अपनी लगभग १५० चेलि साथ भारत में पदार्पण किया, और यहाँ आकर इस मंडली का नया नाम ब्रह्मा रखा और आबू में जाकर दादाजी ने अपना डेरा जमाया। वहाँ की जनता अपना विरोध प्रदर्शित किया तो कुछ वर्षों के लिए दादा जी ने मौन साध तदुपरान्त आबू पर्वत पर एक अच्छी कोठी किराये पर लेकर जा बसे और पुनः चालू कर दिया।

सिन्ध से साथ लायी अपनी चेलियों को भारत के कुछ प्रमुख नगरों और क्षेत्र तैयार करना आरम्भ किया। आबू में इन ब्रह्माकुमारियों को जा एवं काजलिया पल्टन के नाम से पुकारा जाता है। ये दोनों विशेषण क्रिया में दक्ष होने एवं नेत्रों में एक विशेष प्रकार का काजल जो त्राटक की में सहायक होता है, लगाने के कारण सार्थक भी प्रतीत होते हैं।

नाम-व्याख्या

इस ब्रह्माकुमारी नाम के सम्बन्ध में ऐसा अनुमान होता है कि दादा अपने को ब्रह्मा कहते थे और हर ५००० वर्षों में एक बार अपनी तथ चतुर्युगी की समाप्ति वेला में ब्रह्म-लोक को त्याग कर पृथ्वी तल पर मानव श आने का दावा करते थे, और इस बार एक वृद्ध मानव शरीर में अपने को अ हुआ बतलाते थे। उनके प्रति आत्म-समर्पण करने वाली देवियाँ ब्रह्माकुमारी एव ब्रह्माकुमार कहाते हैं। स्त्री विवाहित हो या अविवाहित, पति को त्यागकर या पतित्यक्ता हो सब इस पन्थ में दीक्षित होने पर ब्रह्माकुमारी ही कहाती हैं। प्रकार युवा एवं वृद्ध नर ब्रह्माकुमार नाम से पुकारे जाते हैं।

भाई-बहिन का नाता

इस सम्प्रदाय में दीक्षित होने के उपरान्त पति-पत्नी परस्पर एक दूसरे बहिन-भाई कहने लगते हैं। यह पति-पत्नी का आपस में भाई बहिन का नाता क्या पति-पत्नी आपस में संयम एवं ब्रह्मचर्य का जीवन नहीं बिता सकते। सम्बन्ध को पाप का सम्बन्ध यह मानते हैं। और क्या यह तथाकथित भाई परस्पर विषय भोग नहीं करते? आश्रम के अन्दर शाखा में भाई-बहिन और से बाहर जाकर ज्यों के त्यों पति-पत्नी बन जाते हैं। आश्रम में स्थायी रूप से करने वाली देवियाँ भी छुट्टी लेकर जातीं और अपने पति के साथ करती हैं। और क्या इन आश्रमों में भी यह भाई-बहिन संयम से ही सदा रह देर रात्रि गये तक इन आश्रमों में भाई लोगों का कारों में बैठ कर आना-जा रहस्यपूर्ण नहीं है?

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ब्रह्माकुमारियाँ और ईसाइयत

ब्रह्माकुमारियों के अनेक मन्तव्य, विचार एवं व्यवहार ईसाइयों से मिलते-जुलते हैं। जिससे यह भी आशंका होती है कि यह कहीं प्रच्छन्न ईसा अथवा ईसाई मिशन से सहायता प्राप्त तो नहीं है। न्यून से न्यून इतना तो अवश्य ही कहा जा सकता है कि यह ईसाई मत से विशेष रूप से अनुप्राणित है।

आज भारत के कोने-कोने में ईसाइयों का यह प्रचार है कि कयामत शीघ्र आने वाली है, और यह सारा संसार नष्ट हो जाने वाला है; और जो लोग प्रभु ईसा मसीह की शरण में आजावेंगे केवल वही बच सकेंगे; शेष सब मिट जाने वाले हैं। अतः अविलम्ब प्रभु ईसा मसीह की शरण में आ जाओ जो अपने को बचाना चाहते हो।

इस प्रकार यह ब्रह्माकुमारी प्रचारिकायें अपनी शाखाओं में यह प्रचार करती हैं कि चतुर्युगी का अन्त सन्निकट है। संसार के मानवों की रक्षा हेतु स्वयं ब्रह्मा जी ब्रह्मलोक त्याग कर वृद्ध मानव शरीर में अर्थात् दादा लेखराज जी के शरीर में अवतरित हुए हैं; तथा जो उनकी शरण में आवेगा उनको वह प्रलय (क़यामत) उपस्थित होने पर सकुशल अपने धाम ब्रह्मलोक में पहुँचा देंगे और शेष सब नष्ट हो जावेंगे।

श्री दादा जी का अपने त्रिमूर्ति ब्रह्मा कहने से तात्पर्य सिवा ईसाइयों के होली फादर, होली सन एवं होली घोस्ट के एकीकरण के और क्या है? यदि त्रिमूर्ति से उनका तात्पर्य त्रिदेव अर्थात् ब्रह्मा विष्णु और महेश से होता तो वह शिव को त्रिदेव से पृथक् न मानते।

श्री दादा जी को ब्रह्माकुमारियाँ परम पिता अर्थात् होली फादर कहती हैं, और प्रत्येक शाखा के प्रमुख को श्री पिता जी अर्थात् रेवेरेण्ड फादर की उपाधि से विभूषित करती हैं। इसी प्रकार ईसाइयों की भान्ति परस्पर ब्रदर्स एवं सिस्टर्स शब्द का हिन्दी में प्रयोग करती हैं। स्वयं वरजिन्स अर्थात् कुमारी कहाती हैं।

पूजा बलिदान की समाप्ति पर प्रौटेस्टेन्ट ईसाइयों में द्राक्षारस में भिगोकर पवित्र रोटी के टुकड़े तथा कैथालिकों में शैम्पन अभिषिक्त टुकड़े भक्तों के मुखों में होली फादर द्वारा डाले जाते हैं। इसी प्रकार विशेष-विशेष अवसरों पर परमपिता जी, श्री पिता जी अथवा श्रद्धा माता जी (रेवेरेण्ड मदर) भक्तों के मुखों में अपने कर-कमलों से प्रसाद डालती हैं।

परमपिता श्री दादा जी द्वारा आबू के पाण्डु-भवन में तथा सर्वत्र जहाँ-जहाँ वह पदार्पण करते हैं, ब्रह्माकुमारियों का मुख चुम्बन किया जाना एवं गोदी में उनका लिटाना ईसाईयों की संस्कृति का प्रचार करना नहीं तो क्या है? भारतीय परम्पराओं एवं मर्यादाओं की दृष्टि से यह सब व्यवहार पाप है, और व्यभिचार का एक रूप है। भारतीय संस्कृति में पिता अपनी कुमारी या युवती पुत्री का मुख चुम्बन करे, यह सर्वथा निषिद्ध है। बाल कन्या का मुख चुम्बन भी त्याज्य माना गया है। किन्तु इस सम्प्रदाय में इस कुकृत्य को पाप शून्य माना जाता है; पाश्चात्य सभ्यता में परनारियों के साथ प्रेम वार्ता करना, एकान्त भ्रमण करना, तथा सहवास करना दूषित नहीं माना जाता; इसी प्रकार यह ब्रह्माकुमारियाँ भी योग साधना का ढोंग रचकर परपुरुषों और

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विशेष कर युवकों के साथ आंख से आंख मिलाकर बैठती हैं। हमारी संस्कृति की दृष्टि में यह सर्वथा हेय कर्म है, और काम चेष्टा को जागृत करने वाला निन्दित व्यापार है। हमारे यहां तो पर नारी के मुख की ओर ताकना तक अशिष्टता ही मानी जाती है। विश्वस्त सूत्र से यह पता चला है कि सन् १९५७ में जब श्री दादा जी सहारनपुर पधारे थे, तो अपने उतारे की कोठी में उनके उदर को मेज बना कर ब्रह्माकुमारियों ने ताश तक खेले और दादा जी लेटे-लेटे रस लेते रहे। दादा जी के भक्त बतलाने का कष्ट करें कि यह कौन-सी योग साधना थी ?

भारतीय संस्कृति से द्रोह

आर्य संस्कृति विश्वासी भारत के प्राय: सब ही सम्प्रदायों तक ने अर्थात् शैव, शाक्त, वैष्णव, बौद्ध, सिख आदि तथा ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज आदि तक ने वेद को विश्व का प्रचीन ज्ञान ग्रन्थ माना है, साथ ही भारतीय अध्यात्मशास्त्र उपनिषद्, गीता आदि को पूरी-पूरी मान्यता प्रदान की है। किन्तु इस ब्रह्माकुमारी सम्प्रदाय ने सबको धता बताई है। आर्य [हिन्दू] पर्वों तथा संस्कारों को कहीं किसी मुरली में मान्यता प्रदान की गई हो तो बतावें। और जहाँ तक हमारी मर्यादाओं और परम्पराओं का सम्बन्ध है, उनका तो यह स्पष्ट विरोध अपने व्यवहारों तथा आचरणों द्वारा पग-पग पर करते ही हैं।

मुरलियाँ

दादा जी द्वारा पाण्डु-भवन से जो समय-समय पर विज्ञप्तियाँ प्रकाशित होती हैं, और शाखाओं में दादा जी के गोप-गोपी भक्ति-भाव से उनको पढ़ते और सुनते हैं—वह मुरलियाँ कहाती हैं। दादा जी ने जब कराची में ओ३म् मण्डली बनाई थी तो वह अपने को कृष्ण रूप में अवतरित हुआ वतलाते थे और अपनी शक्ति को ओं राधा कह कर पुकारते थे; किन्तु भारत में आकर जब से आप ने ओ३म् मण्डली को ब्रह्माकुमारी रूप दिया है, तब से वह अपने को कृष्ण के स्थान पर ब्रह्मा कहने लगे हैं, और राधा को सरस्वती की उपाधि से विभूषित किया है।

जिस प्रकार श्रीमद्भागवत का कृष्ण अपनी मुरली की सुमधुर ध्वनि द्वारा जन मानस को अपनी ओर आकर्षित करता था, उसी प्रकार दादा जी जब सिन्ध में कृष्ण बने हुए थे, और ब्रह्माकुमारी इनकी गोपियाँ थीं, तो उन्होंने अपने प्रसारित ज्ञान को मुरली की संज्ञा प्रदान की थी। भारत में आकर ब्रह्मा बनने के उपरान्त मुरली का पूर्व नाम ही ज्यों का त्यों रहने दिया गया है। भारत में आकर वह ब्रह्माकुमारियों को अपनी पुत्रियाँ कहने लगे हैं ? किन्तु उनके साथ व्यवहार वह गोपियों के साथ जैसा ही करते थे।

ब्रह्माकुमारियों का ईश्वरीय ज्ञान

समय-समय पर प्रसारित इन मुरलियों में से छांटकर ८८ मुरलियाँ पृथक् एक सच्ची गीता पुस्तक के नाम से प्रकाशित की गई है। मुरलियों की मूल भाषा अत्यन्त अशुद्ध एवं निम्न कोटि की है। जिससे यह पता चलता है, कि श्री दादा जी का भाषा सम्बन्धी ज्ञान अत्यन्त ही अल्प है। सम्भवतः उनको केवल लिखना और पढ़ना मात्र ही आता है। इन मुरलियों में जो कुछ लिखा हुआ है, उससे यह भी स्पष्ट हो जाता

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

है कि दादा जी वेदशास्त्र आदि के विषय में नितान्त शून्य हैं। धर्म की दुनिया में यदि आये ही थे तो कुछ अध्ययन-मनन आदि कर लेते; किन्तु उनको तो धर्म एवं योग की आड़ में कुछ और ही प्रसार करना था, तथा बुद्धिवाद एवं मानवता के स्थान पर अन्ध-विश्वास एवं संकीर्ण मतवाद का प्रसार करना ही अभीष्ट था। अस्तु; अब हम पाठकों को इनके इस तथाकथित ईश्वरीय ज्ञान अर्थात् सच्ची गीता का कुछ दिग्दर्शन कराना चाहते हैं।

सच्ची गीता के आरम्भ में उसको सर्वश्रेष्ठ अपौरुषेय ज्ञान माना है, और युक्ति यह दी गई है कि अन्य ईश्वरीय ज्ञान (इलहाम) तो संसार में मानवों द्वारा ही प्रकट हुए हैं, किन्तु इनका यह ज्ञान साक्षात् शिव (परमात्मा) अपने आनन्द धाम से समय-समय पर पृथ्वी-तल पर लाते और वृद्ध शरीर में अवतरित ब्रह्मा द्वारा उसको प्रकाशित करते हैं किन्तु जब तक सर्वव्यापक परमात्मा का किसी स्थान विशेष में ही रहना और वहाँ से आना-जाना और तथाकथित ब्रह्मा का ब्रह्मलोक त्याग कर मानव-देह में दादा जी के रंगीले पुतले में अवतरित होना युक्ति तर्क विज्ञान एवं प्रमाणों से सिद्ध न किया जाय यह सब धारणाएँ मिथ्या कपोल कल्पनाओं के अतिरिक्त कुछ मूल्य नहीं रखतीं।

इन मुरलियों की संहिता को सच्ची गीता नाम से पुकारना आपत्तिजनक है। उस नाम से यह स्पष्ट ध्वनि निकलती है कि योगीराज कृष्ण की गीता झूठी है। मुरली सं० ५७ के अन्त में लिखा है कि—

'श्री कृष्ण जी राम से पूर्व सत्ययुग में हुए हैं। सूर्यवंशी श्री नारायण ही का स्वयंवर से पहले का नाम कृष्ण है। श्री कृष्ण जी ने गीता ज्ञान दिया ही नहीं; बल्कि अपने पूर्व जन्म में ब्रह्मा के रूप में मुझ (लेखराज) से गीता ज्ञान लिया।'

इस लेख से यह स्पष्ट है कि महाभारत का सारा इतिहास झूठा है। इनके मत में द्वापर की संधि वेला में योगीराज महात्मा कृष्ण हुए ही नहीं। चन्द्रवंश में इस विभूति ने जन्म ही नहीं धारण किया। तात्पर्य यह है कि ब्रह्माकुमारियों के आचार्य के मत से महाभारत के रचयिता वेद व्यास वैशम्पायनादि झूठे हैं। जिन शंकर, अरविन्द, गांधी आदि महापुरुषों ने गीता को आत्मा की अमरता का कृष्ण द्वारा प्रदत्त दिव्य ज्ञान माना है, वह सब ही भ्रान्त हैं। केवल इनके दादा जी सच्चे थे जिन्होंने युक्ति तर्क प्रमाण शून्य यह गपोड़ा गढ़ा है कि सूर्यवंशी नारायण का बाल्यावस्था का नाम कृष्ण था। कृष्ण नाम का कोई ऐतिहासिक युगपुरुष धरती पर जन्मा ही नहीं है। भारत के इतिहास को इस निर्लज्जतापूर्ण ढंग से झुठलाना, कृष्ण के अस्तित्व से इन्कार करना अक्षम्य राष्ट्रीय एवं जातीय महापाप है।

युग कल्पना

भारत के समस्त वैदिक आचार्यों ने हिमालय से कन्याकुमारी तक युगयुगान्तरों से प्रचलित संकल्प के अनुसार सृष्टि संवत् को माना है। तदनुसार एक कल्प ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष का होता है। कल्प में १४ मन्वन्तर और प्रत्येक मन्वन्तर में ७२ चतुर्युगी तथा प्रत्येक चतुर्युगी में ४३२०००० वर्ष माने गए हैं। चार युग अर्थात् कलि, द्वापर, त्रेता एवं सत् हैं, जिनकी अवधि ४३२०००, ८६४०००, १२९६००० एवं १२२८००० वर्ष क्रमशः हैं। भारत के प्राचीन ज्योतिष शास्त्र एवं मनु आदि धर्मशास्त्र इसका प्रतिपादन करते हैं। किन्तु हमारे दादा लेखराज जी बिना किसी युक्ति, तर्क

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

एवं प्रमाण के यह मनवाना चाहते हैं, कि हम कल्प केवल ५००० वर्षों का मान
उसके अन्दर प्रत्येक युग की आयु केवल १२५० वर्ष। मानो दादा जी की गण
मन्वन्तरों एवं चतुर्युगियों का काम नहीं। दादा जी के कथनानुसार प्रति ५००
के उपरान्त प्रलय हो जाती है, और प्रत्येक कल्प में सारी की सारी घटनाएं ज्
त्यों घटित होती हैं, और उनमें लेशमात्र भी अन्तर नहीं होता। जर्थुस्त मूसा,
बुद्ध, मुहम्मद, शकर, नानक आदि मतों के आचार्य यथाक्रम प्रति कल्प में जन्
और मतवादों का प्रचार करते हैं। दादा जी के विचारों के अनुसार अब प्रलय
कट है। वर्तमान संसार को बने लगभग ५००० वर्ष केवल हुए हैं। दादाजी की कल्प
आधार उनके स्वामी ईसाई विद्वान् हैं। दादा जी ईसाइयों को इस बुद्धि शून्य म
को हिन्दू जाति के सर लादना चाहते हैं। और इस प्रकार भारतीय ज्योतिषशास्
इतिहास पर पुचारा फेरना चाहते हैं। वैज्ञानिकों के मत में इन लोक-लोकान्त
निर्माण में करोड़ों वर्ष लगे हैं। हिमालय जिसकी ऊंचाई ३१००० फुट तक है,
चट्टानों का निर्माण सागर के अन्दर १ अरब से अधिक वर्षों में वैज्ञानिकों की
के अनुसार हुआ है। दादा जी के इस मतानुसार यह सारे ज्योतिष शास्त्र झूठे
वैज्ञानिक झूठे हैं, और केवल यह लालबुझक्कड़ सच्चे हैं।

मातेश्वरी सीता का अपमान

मुरली सं० ६५ दादा जी लिखते हैं कि राम का इतिहास केवल काल्पनि
नाटककार ने यह आध्यात्मिक पहेली को केवल मूर्त्तरूप प्रदान किया है। राम ना
का ही है। रावण नाम माया का है। मन उसकी लका है और विकार ग्रस्त मनु
आत्मा का नाम सीता है। इस प्रकार की प्रलापपूर्ण दादा जी की मान्यताएं हैं।
मुरली में लिखा है कि—

"रावण (माया) ने सीता (आत्मा) से भीख मांगी और जब सीता ने
(मुझ परमात्मा) द्वारा लगाई गई लकीर (मर्यादा) को उल्लांघा तो रावण (म
ने सीता का हरण कर लिया और आत्मा रूपी सीता रावण के कारागार में जीव
अवस्था में कैदी हो गई।"

दादा जी ने यदि रामायण पढ़ी होती तो लकीर लगाने वाले को राम
परमात्मा न लिखकर) लक्ष्मण (मुझ परमात्मा के भैया) लिखते। इस मुरल
दादा जी ने अपने को ब्रह्मा से ऊपर साक्षात् परमात्मा माना है, और अपने को ही
भी कहा है। वाल्मीकि के राम को केवल काल्पनिक प्रतिपादित किया है। सीत
धर्म की मर्यादा उल्लंघन करने वाली विषय-वासनारत जीव कल्पित किया है,
कल्पना के पीछे, जिसका कोई आधार नहीं, दादा जी की नीच कलुषित मनोवृत्ति
कर रही है, जिसका प्रदर्शन वह पाण्डु-भवन के अपने प्रवचनों में भी यदा-कदा
रहते हैं।

दादा जी का इस प्रकार सीता माता के सतीत्व पर चोट करना हिन्दू
की भावनाओं को आघात पहुंचाना है। राम एवं सीता के पवित्र इतिहास को इस
झुठलाना महान् राष्ट्रद्रोह है। राम भारत का महान् राष्ट्र पुरुष है, और मातं
सीता तप, त्याग, संयम एवं सदाचार की दीप्त प्रतिमा। यूरोपीय ईसाई ले
ने राम, कृष्ण आदि के पावन इतिहास को मिटाने के लिए और हिन्दू जनता को
भ्रष्ट करने के लिए महान् कुचक्र रचा है। और दादा जी जब इस प्रकार उस

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का समर्थन कर रहे हैं, तो क्यों न हम आपको और इस ब्रह्माकुमारी पन्थ को ईसाइयों का एजेन्ट और एजेन्सी कहें।

मुरली नं० ६६ में दादा जी फरमाते हैं—

"महात्मा गांधी जी ने मुझ गीता के निराकार भगवान् को जाना ही नहीं; इसलिए उन्होंने जो सिविल नाफरमानी असहयोग आमरण-व्रत आदि के रूप में हठ-योग के तरीके अपनाये वह सभी मेरे ईश्वरीय ज्ञान और योग के विपरीत थे। इस लिए उनके जीवनकाल में रामराज्य की शुभ इच्छा पूरी न हो सकी।"

सर्वप्रथम हम इस रसिक रंगीले पाठे की हिम्मत की प्रशंसा करते हैं कि जो इस विज्ञान एवं बुद्धिवाद के युग में ५ फुट का शरीर धारण किये अपने को निराकार भगवान् कहने की जुर्रत करता था।

महात्मा गांधी जैसे महान् ईश्वर-भक्त को नास्तिक कहना यथार्थ में धूर्त नास्तिकों का ही काम है। आज तक भारत के शत्रु अंग्रेजों को भी यह जुर्रत नहीं हुई कि वह महात्मा गांधी के सत्य अहिंसा पर आधारित असहयोग आन्दोलन की और जाति रक्षा-हित उनके किये गये आमरण अनशन की इस प्रकार भर्त्सना करें। सारा संसार महात्मा गांधी के अहिंसात्मक आन्दोलन को इस युग की अनुपम देन समझता है। आज दिन संसार के विभिन्न देशों में तपस्वी मानव सत्य अहिंसामय इन साधनों का प्रयोग कर रहे हैं। और संसार को विज्ञान के तामसिक प्रभाव से बचाने के लिए अपने प्राणों तक की बाजी लगा रहे हैं। इधर यह ईसाइयों के एजेन्ट गांधी जी और उनके महान् सिद्धान्तों पर चोट करने पर उतारू हैं। दादा जी का मत हैं कि महात्मा जी ने जो मार्ग दर्शाया है, उससे राम-राज्य की स्थापना नहीं हो सकती। गांधी जी के मार्ग को हजरत ने हटयोग का मार्ग बतलाया है, जबकि वह स्वयं हठयोग की त्राटक क्रिया द्वारा चेले-चेली मूंड़ने में व्यस्त हैं और धर्म की आड़ में अधर्म का प्रचार कर रहे हैं। गांधी जी का मार्ग तो आपकी दृष्टि में राम-राज्य के स्थान पर संभवतः रावण राज्य स्थापित करेगा और आप तथा आपकी ब्रह्माकुमारियां ही राम-राज्य की स्थापना करेंगी। कैसी विडम्बना है।

मुरली नं० ६६ में आप फरमाते हैं कि—

"भारतवासी अन्य धर्म स्थापना करने वाले मनुष्यों के जन्म दिन तो मनाते हैं। किन्तु मुझ निराकार परमात्मा (शिव) की जयन्ती नहीं मनाते।"

इस स्थल पर पुनः इस रंगीले पाठे ने अपने को निराकार परमात्मा कहने की धृष्टता की है। दादा जी को जनता से यह गिला है कि वह मेरी जयन्ती क्यों नहीं मनाती। जीव को ब्रह्म मानना सिद्धान्ततः मूर्खता है। भारत की जनता अब इस मूर्खता में फंसने वाली नहीं। दादा जी को अपनी जयन्ती मनवाने की उत्कट इच्छा थी। हम भी जनता से यह अनुरोध करेंगे कि वह उनकी जयन्ती अवश्य मनावे, किन्तु जैसे वह थे वैसे ही उनकी जयन्ती मनाई जानी चाहिये। सन् १९५७ में मय्यर साहब की कोठी में जैसी जयन्ती मनी है, क्या वह सर्वत्र वैसी ही मनवाना चाहते हैं ?

भारत के पतन का कारण इनकी सच्ची गीता के अनुसार निम्न प्रकार दर्शाया गया है—

"भारत की सरकार ने ईश्वरीय त्रिमूर्ति अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु शंकर के तथा उनके भी रचयिता मुझ परमात्मा शिव के चित्र की बजाय और सृष्टि-चक्र के बजाय

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तीन शेरों वाले अशोक चक्र को ही अपना राष्ट्रीय निशान निर्धारित किया हैं।"

तात्पर्य यह है कि भारत सरकार यदि अशोक चक्र के स्थान पर दादा लेखराज के सृष्टि-चक्र को अपनाती और भारतमाता तथा राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के चित्रों के बजाय दादाजी और उनकी प्रेयसी के चित्रों को पूजती तो देश का पतन न होता और भारत में राम-राज्य भी स्थापित हो जाता।

इसी मुरली में आगे दादाजी लिखते हैं कि—

"मेरे प्रिय बच्चे कांग्रेस-पति गांधी जी जो कार्य अधूरा छोड़ गये हैं, उसको पूरा करने के लिए पाण्डव-पति अर्थात् गीता का भगवान् अवतरित हुआ हूं।"

महात्मा गांधी को राष्ट्र-पिता न मानकर कांग्रेस-पति कहना निश्चय उनका अपमान करना है। पिता के कार्य को पूरा करने के लिए पुत्र तो सदा प्रयत्न करता आया है; किन्तु यहाँ बात उलटी है। पुत्र के कार्य को पूरा करने के लिए पिता ने जन्म लिया है। राष्ट्र-पिता गांधी को अपना बच्चा कहने की इस पाखण्डी की हिम्मत की बलिहारी है। जब गांधी जी के मार्ग को यह हज़रत हठयोग मानते और राम-राज्य स्थापना के विपरीत मानतें हैं तो उसको पूरा करने का यह दम्भ कैसा ? ●

एक इंच मुस्कान

पति—(अपने पुत्र की अक्ल की बड़ाई करते हुए) "मैं कहता हूं उसे मेरा दिमाग मिला है, तभी इतना होशियार है।"

पत्नी—"हाँ आप ही का मिला होगा, क्योंकि मेरा तो अभी मेरे पास है।

\+ + + +

मास्टर—क्यों मोहन, पायजामा कौन-सा वचन है ?

मोहन—ऊपर से एकवचन और नीचे से बहुवचन।

\+ + + +

बूढ़े व्यक्ति को अंधेरे रास्ते में रोककर लुटेरे ने कहा—"रुपया दो या जान दो।"

"मेरी जान ले लो, रुपया तो मैं बुढ़ापे के लिए बचा रहा हूँ।" बूढ़े व्यक्ति का उत्तर था।

\+ + + +

"डाक्टर साहब ! कभी-कभी तो रात को सोते समय मुझे इतने जोर से खर्राटे आते हैं कि उनकी आवाज से मैं खुद ही जाग जाता हूँ।"

"तो मेरी राय से तुम दूसरे कमरे में सोया करो।" डाक्टर ने सलाह दी।

\+ + + +

अध्यापक—अप्रत्यक्ष कर (इन्डायरेक्ट टैक्स) किसे कहते हैं ?

विद्यार्थी—"जैसे गाय, भैंस, कुत्ते इत्यादि पर टैक्स"

अध्यापक—"यह कैसे ? स्पष्ट करो।"

विद्यार्थी—"क्योंकि यह टैक्स उन्हें नहीं किसी और को देने पड़ते हैं।"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

गृहस्थ जीवन की सुख-वृद्धि के सुनहरे नियम

—श्री रघुनाथप्रसाद जी पाठक

गृहस्थ जीवन की सुख-वृद्धि के लिए परमावश्यक है कि वर और वधू हर प्रकार से एक दूसरे के उपयुक्त हों और उनमें सहृदयता और शिष्टता कूट-कूट कर भरी हो। नववधुएं जितनी बाहर वालों के प्रति शिष्ट होती हैं उतनी अपने पतियों और संबंधियों के प्रति शिष्ट हों तो गृहस्थों की सुख-समृद्धि का ठिकाना न रहे।

अशिष्टता कैंसर के सदृश होती है जो प्रेम और सौख्य को धीरे-धीरे चट कर जाती है। इस बुराई को जानते हुए भी लोग अपने घर वालों के प्रति उतने शिष्ट नहीं होते जितने अपने मित्रों और परिचितों के प्रति होते हैं। हम अपने किसी परिचित व्यक्ति अथवा मित्र के पत्र को बिना उसकी अनुमति के खोलने की कल्पना नहीं कर सकते। उनकी गुप्त बातों को जानने की ओर जरा भी ध्यान नहीं देते परन्तु अपने घर वालों और सम्बन्धियों को उनकी छोटी-छोटी भूलों पर अपमानित करने में नहीं चूकते। कैसी विडम्बना है! जितनी अशिष्ट, अपमानजनक और घाव करने वाली बातें हमें अपने संबधियों और घर वालों से सुननी पड़ती हैं उतनी बाहर वालों से नहीं।

शिष्टता हृदय का वह गुण होता है जो बाग के टूटे-फूटे दरवाजों को न देखकर उसके फूलों को देखता है। विवाह के लिए शिष्टता उतनी ही आवश्यक है जितनी मोटर के लिए तेल।

ऐसे भी श्रेष्ठ व्यक्ति होते हैं जो अपने दुःख और क्षोभ को चुपचाप पी जाते और अपने परिवार के किसी व्यक्ति पर प्रकट नहीं होने देते। वे अपने हृदय की अत्यधिक धवलता से दुःख और रोष की काली रेखाओं को छुपा देते हैं।

परन्तु ऐसे व्यक्ति विरले ही होते हैं। साधारण व्यक्तियों का व्यवहार उनसे सर्वथा भिन्न होता है। आफिस में काम खराब होने, पर अफसरों द्वारा फटकार पड़ने या दूकान पर सौदा बिगड़ जाने इत्यादि पर उनके शिर में पीड़ा होने लग जाती है और वे घर जाने के लिए उतावले हो जाते हैं। घर पहुंचकर वे आराम नहीं करते प्रत्युत अपने क्रोध को अपनी पत्नियों पर उतार डालते हैं।

हालैंड में प्रत्येक व्यक्ति दिन भर के काम से लौटने पर घर में प्रवेश करने से पूर्व अपने जूते ड्योढ़ी के बाहर निकाल देता है। इसका अभिप्राय यह है कि वे लोग दिनभर के कष्टों को घर के बाहर ही छोड़ देते हैं। संस्कृत साहित्य में वर्णित व्यवहार का आदर्श यह है कि जिस प्रकार किसी व्यक्ति को मान-अपमान, सुख-दुःख, हानि-लाभ आदि की अनुभूति होती है उसी प्रकार दूसरों को भी होती है। अतः दूसरों के साथ व्यवहार में इस आदर्श को सामने रखते हुए, उनके भावों का पूरा-पूरा ध्यान रक्खा जाना चाहिए। इसके विरुद्ध आचरण करना एक प्रकार का अन्धापन माना जाता है। विलियम जेम्स नामक अंग्रेजी के एक लेखक ने इस विषय पार एक बहुत उत्तम निबन्ध लिखा है उसका शीर्षक है "On a certain Blindness in Human Beings" अर्थात् "मानव प्राणियों के एक अन्धेपन के विषय पर"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अपनी पत्नी के प्रति व्यवहार में इस अन्धता का जैसा बुरा परिचय मिलता है वैसा शायद ही अन्यत्र मिल सके। बहुत-से व्यक्ति दूसरों के प्रति व्यवहार में सौजन्य की साक्षात् मूर्ति जान पड़ते हैं, परन्तु अपनी पत्नियों पर कुत्तों की नाईं भौंकते हैं। उनको यह ज्ञात होता प्रतीत नहीं होता कि पत्नी भी मानव-प्राणी है और उसका भी कोई महत्त्व है। पत्नी का महत्त्व तुर्गनेव के हृदय से पूछिये। ये महानुभाव साधारण व्यक्ति न थे। अपितु रूस के एक अत्यन्त प्रतिभावान् उपन्यासकार थे जिनकी प्रतिमा का संसार भर में यशोगान होता था।

अपने हृदय के उद्गारों को वे इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

"I would give up all my genius and all my books, if there were some woman somewhere who cared whether or not I came home late for dinner."

अर्थात् यदि कहीं कोई ऐसी देवी हो जो इस बात का ध्यान रखा करे कि मैं खाना खाने घर पर देर में आता हूँ या समय पर, तो उसके लिए मैं अपनी प्रतिभा और समस्त पुस्तकों का परित्याग कर सकता हूँ।

तुर्गनेव एकान्तप्रिय व्यक्ति थे। उनके इन शब्दों से यह प्रतिध्वनित हो रहा है कि जिन साधारण व्यक्तियों का गृहस्थ जीवन सुखमय है वे एकान्त में रहने वाले प्रतिभाशाली व्यक्तियों से अधिक सुखी और शान्त होते हैं। यदि ऐसे साधारण व्यक्ति की पत्नी हर स्थिति में सन्तुष्ट रहे तो समझो वह पुरुष के लिए एक देन है।

जो लोग स्त्री-स्वभाव को भली भाँति जानते होते हैं यदि वे पत्नी की प्रबन्ध-पटुता की उसके मुंह पर प्रशंसा कर दें तो वे उससे एक-एक पाई निकलवा लेते हैं। यदि वे उसको यह कह दें कि अमुक समय उसने जो साड़ी पहनी थी उसे पहन कर वह बहुत सुन्दर लगती है तो हो नहीं सकता कि पत्नी नई साड़ी की फरमाइश कर सके। मनुष्य यह जानता है कि उसके प्रेम का एक शब्द पत्नी को अन्धा और अपना मूक बना सकता है।

इसी प्रकार जो पत्नी पुरुष-स्वभाव की बारीकियों से परिचित होती है वह पुरुष के उपर्युक्त व्यवहारों को खूब समझती है। वह उस पर क्रोध करना या उससे घृणा करना नहीं जानती क्योंकि यदि वह ऐसा करेगी तो घर की ही हानि होगी जो सुपत्नी के लिए असह्य होगा।

अतः गृहस्थ जीवन की सुख-वृद्धि का एक सुनहरा नियम यह है कि सभ्य और शिष्ट बनो।

दंड शासन

जो दण्ड को अच्छे प्रकार राजा चलाता है, वह धर्म, अर्थ, काम की सिद्धि को बढ़ाता है और जो विषय में लम्पट, टेढ़ा, ईर्ष्या करने हारा, क्षुद्र, नीचबुद्धि न्यायाधीश होता है वह दण्ड से ही मारा जाता है।

जैसे धान्य का निकालने वाला छिलकों को अलग कर धान्य की रक्षा करता अर्थात् टूटने नहीं देता है। वैसे राजा डाकू, चोरों को मारे और राज्य की रक्षा करे।

—स्वामी दयानन्द

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

* टेलीविज़न का सिद्धांत *

श्री हारलेंड मैनचेस्टर द्वारा 'रीडंस डाइजेस्ट' में प्रकाशित

एक लेख का हिन्दी रूपान्तर

टेलीविज़न विज्ञान के जटिल आविष्कारों में से है, यद्यपि उसकी रचना का
अत्यंत सरल और साधारण है। वर्ग वाले ग्राफ़ पेपर और पैन्सिल लिए हुए आप
ोफ़ोन के एक सिरे पर बैठे हुये हैं और दूसरी ओर आपके संदेश को प्राप्त करने
ा मित्र भी इन्हीं साधनों के साथ बैठा हुआ है। आप अपने ग्राफ़-पेपर पर एक
ा बनाते हैं और प्रत्येक पंक्ति के काले और सफेद वर्गों को अपने मित्र को गिनकर
ते हैं। दूसरी ओर बैठा हुआ मित्र आपके निर्देशानुसार अपने ग्राफ़ पेपर में उन्हें
प्रकार अंकित करता रहता है और काले वर्गों की जगह खाली वर्गों में पेन्सिल
सियाही भरता रहता है। इस प्रकार आपके बनाये हुए चित्र के अनुरूप ही आपका
ा भी चित्र बना लेता है।

टेलीविज़न भी इसी प्रकार अपने पर्दे पर चित्र बनाता है। प्रकाश और छाया
छोटे-छोटे टुकड़ों को वह पढ़ता है और उन्हें विद्युत-आज्ञाओं के एक समूह के रूप
परिवर्तित कर देता है। टेलीविज़न का रिसीवर इन आज्ञाओं का अक्षरशः पालन
ता है और इतनी तेजी के साथ कि आप इतनी देर में अपनी पेन्सिल से ग्राफ़-पेपर
स्पर्श भी न कर सकेंगे कि लाखों वर्ग बनकर तैयार हो जायेंगे।

टेलीविज़न के जटिल यंत्र में दो नलिकाएँ ट्यूब—होती हैं: एक केमरा ट्यूब
चित्र को टुकड़ों-टुकड़ों में ग्रहण करता है, और दूसरा संग्राहक—रिसीविंग—ट्यूब
चित्र के टुकड़ों-टुकड़ों को प्राप्त और पुनः संघटित कर टेलीविज़न के पर्दे पर प्रति-
म्बित करता है। ये दोनों ट्यूब कई बातों में जुड़वाँ बच्चों की तरह सादृश्य रखते
: प्रत्येक ट्यूब में एक प्रकाश-चेतन (Light Sensitive) स्क्रीन या पर्दा और निर्दे-
क के रूप में ऋण विद्युत्कणों (इलैक्ट्रोन्स) का एक किरण-पुंज रहता है। टेली-
ज़न-केमरे में लैन्स कांच के एक पर्दे पर चित्र को प्रतिबिम्बित करता है। और
च के इस पर्दे पर हज़ारों प्रकाश चेतन (लाइट सैंसिटिव) बिंदुओं का आवरण चढ़ा
ता है, जिनकी तुलना ग्राफ़-पेपर के वर्गों से की जा सकती है। प्रत्येक बिंदु जिस
रमाण में प्रकाश प्राप्त करता है उतना ही शक्तिशाली विद्युत-आवेश (इलैक्ट्रीकल
र्ज) वह उत्पन्न करता है और लैन्स के माध्यम से आने वाला दृश्य पर्दे पर एक
द्युत-नमूने के रूप परिवर्तित हो जाता है। तब ऋण विद्युत्कणों—इलैक्ट्रोन—की
ूक द्वारा ट्यूब की गर्दन में जो किरणपुंज (Beam) छोड़ी जाती है और विद्युत

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चुंबक (इलैक्ट्रो मैगनेट) के द्वारा पर्दे के एक सिरे से दूसरे सिरे तक आगे-पीछे आकर्षित और विकर्षित की जाती है वह किरण-पुंज बिंदुओं की पंक्ति पर बांई ओर से दाँई ओर उसी प्रकार दौड़ती है जैसे हमारी आँख किसी छपे हुए पृष्ठ को पढ़ने के लिए दौड़ती है और वह प्रत्येक बिंदु के विद्युत-आवेश (इलैक्ट्रीकल चार्ज) को एक-एक करके चुन लेती है। ध्वनि-विस्तारक नलिका (एम्पलीफ़ाइंग ट्यूब) तथा अन्य आवश्यक भागों की सहायता से तब संदेश का प्रवाह निर्मित होता है तथा विस्तारित होता है।

टेलीविज़न के संग्राहक सट (रिसीविंगसैट) में चित्रनलिका (पिक्चर ट्यूब) केमरा नलिका की क्रिया को उलट देती है और विद्युत को फिर प्रकाश के रूप में बदल देती है। केमरे में जुड़वाँ नलिकाओं के साथ विशेष विस्तरण संकेतों के द्वारा किरण-पुंज को समकालिक [1](Synehromize) बनाया जाता है और वह किरण-पुंज दीप्तिमान चित्रपटल पर पीछे और आगे की ओर दौड़ती है और प्रत्येक बिंदु को इस प्रकार उत्तेजित करती है कि वह उसी परिमाण में प्रकाश देता है जिस परिमाण में उसका साथी स्टूडियो के कैमरे में ग्रहण करता है। कंपन को दूर करने के लिए दोनों किरण-पुंज बिंदुओं की प्रत्येक दूसरी पंक्ति पर दौड़ जाते हैं और फिर छोड़ी हुई पंक्ति को मिलाने के लिए तेज़ी से लौट जाते हैं। प्रत्येक सेकिंड में तीस पूर्ण स्थिर चित्र, जिनमें से प्रत्येक लगभग २००,००० अलग-अलग प्रकाशित बिंदुओं से बना होता है, दिखाये जाते हैं। लेकिन क्योंकि आँख एक चित्र से दूसरे चित्र तक की प्रतिबिम्बित-शृंखला को धारण रखती है इसलिए टेलीविज़न अनौपरोधित गति की छलना उत्पन्न कर देता है।

---

१. समकालिक करने से तात्पर्य यह है कि चित्रावली तथा ध्वनि दोनों को इस प्रकार मिलाया जाय जिससे क्रिया तथा ध्वनि साथ-साथ होते मालूम पड़ें।

ज्योति अभिनन्दन तुम्हारा

यो अग्नि तन्वो दमे देवं मर्तः सपर्यति
तस्मा इद्दीदयत् वसु। ऋक् ८.४४.१५

जो अन्तर के गृह-मन्दिर में,
पावन जोत जगाये।
अग्नि शिखा सम तेजस्वी हो,
विश्व-ज्योति बन जाये।
अन्तर्वासी परम देवता
के चरणों में जीवन,
अर्पित करता जन जो वह ही
प्रभु का दर्शन पाये।

पद्यानुवाद :
—सत्यकाम विद्यालंकार

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वैदिक दर्शन : एक नयी दृष्टि

गिरिजेश शर्मा

विश्व-वाङ्मय के इतिहास के प्राचीनतम तथा अद्वितीय अभिलेख, वेदों का दर्शन एक विवादास्पद विषय है। वेदों में वर्णित अग्नि, इन्द्र, वरुण आदि विविध देवताओं के आधार पर पाश्चात्य मनीषियों की यह धारणा है कि वैदिक दर्शन बहुदेवता वादी है। बहुदेवतावाद का अर्थ है कि वैदिक ऋषि स्वतन्त्र-सत्तापरक एवं प्राकृतिक शक्तियों के द्योतक अनेक देवताओं में विश्वास रखते हैं। उन्होंने भौतिक जगत् की विस्मयजनक घटनाओं की कारण-परक व्याख्या के लिए प्रत्येक के पीछे अवस्थित एक देवता की परिकल्पना की। पाश्चात्य विद्वानों की यह मान्यता कि वैदिक दर्शन बहुदेवतावाद से आरम्भ होकर एकदेववाद की ओर अग्रसर होता है—सत्य की नींव पर आधारित नहीं है।

लौकिक संस्कृत के ज्ञान के आधार पर वेदों की मीमांसा, मन्त्रों के सूक्ष्म निहितार्थों एवं भावों की उपेक्षा करके उनका केवल वाच्यार्थग्रहण, देवतातत्त्व के आधिदैविक एवं आध्यात्मिक पक्ष की पूर्ण अवहेलना करके उसके केवल आधिभौतिक पक्ष पर बल, अपनी सांस्कृतिक परम्परा की कसौटी पर वैदिक दर्शन का मूल्यांकन तथा यह पूर्वाग्रह कि आर्य भारत के मूल निवासी न होकर कहीं बाहर से आये थे एवं उनकी संस्कृति उस समय अपने उदय-काल में थी—आदि, अनेक ऐसे कारण हैं जो पाश्चात्य मनीषियों की वेद विषयक धारणा में शंका को जन्म देते हैं। अतः वेदों के पूर्वाग्रहमुक्त पुनर्विवेचन की आवश्यकता प्रतीत होती है। आज भारतीय मनीषा के अपनी सांस्कृतिक धरोहर के प्रति जागरूक हो जाने के कारण, स्वयं पाश्चात्य विद्वान् यह स्वीकार करने लगे हैं कि वे भारतीय आत्मा को उतनी गहराई के साथ समझने में असमर्थ रहे हैं, जितनी सूक्ष्मता तथा सूझ-बूझ के साथ एक योग्य भारतीय मस्तिष्क उन्हें समझ सकता है।[1]

---

1. **देखिए**—"Indian concepts and beliefs were often misunderstood and misquoted...........there was a definite obstacle to the real understanding of the Indian spirit, in the nature of the European mind structure itself which...........could not be truly receptive.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आश्चर्य तो यह है कि असंदिग्ध प्रमाणों के अभाव में भी पाश्चात्य आलोचक यह मान लेते हैं कि आर्य मध्य एशिया, हंगरी अथवा जर्मनी से यहां आकर बसे थे। वेदों में वर्णित देवताओं की आधिभौतिक कल्पनाएँ वे वहीं से अपने साथ लाये थे। पाश्चात्य विद्वानों का यह मत वेदों के अन्तःसाक्ष्य द्वारा खण्डित हो जाता है। ऋग्वेद के 'भूमि-सूक्त' में जो भौगोलिक वर्णन हुआ है वह साक्षात् भारत का ही चित्रण है। यदि आर्य बाहर से आये होते तो अवश्य ही उन्होंने कुछ न कुछ मात्रा में अपने मूल निवास-स्थान का भी वर्णन किया होता क्योंकि यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि मनुष्यों में अपने जन्म-स्थान के प्रति एक विशेष आग्रह रहता है। केवल उन सूक्तों के आधार पर, जिनमें आर्यों और अनार्यों के संघर्ष का वर्णन है, यह निष्कर्ष निकाल लेना कि यह एक बाहर से आने वाली जाति का भारत की मूल जातियों से संघर्ष ही हो सकता है, नितान्त असंगत है। संघर्ष आपस में भी हो सकता है। महर्षि दयानन्द, जिनकी वेदों में गहरी पैठ थी, आर्यों का मूल प्रदेश आर्यावर्त्त या ब्रह्मावर्त को ही स्वीकार करते हैं, जिसका अर्थ है कि वेदों का उदय यहीं हुआ और यहीं से उनका प्रचार-प्रसार अन्य देशों में हुआ।[2] डा० अविनाशचन्द्र दास ने भी आर्यों का मूल प्रदेश भारत ही स्वीकार किया है। मनुस्मृति स्पष्ट शब्दों में उद्घोष करती है कि 'इसी देश में उत्पन्न विद्वानों से पृथ्वी के सभी मनुष्यों ने अपने-अपने चरित्र की

Consequently their interpretation (European orientalists' interpretation) was if not insufficient, very often faulty."

Mrs. Meria Burgi's article "Science and Vivekanand" in "Parliament of Religions". P. 311-12, Calcutta (1965)

और भी—"Can we wonder, then, that when it (the western mind) criticises the speculative thought of ancient India, its adverse judgement is apt to resolve itself into fundamental misunderstanding, and even its sympathy is sometimes misplaced."

Edmand Holmes, quoted in Radhakrishnan's "The Principal Upnishads P. 946, London (1953).

२. द्रष्टव्य—'सत्यार्थ-प्रकाश,' ८वां समुल्लास, 'आर्य-अनार्य विवेचन'।

तुलना कीजिए—'''''''यूरोपीय विद्वानों के अनुसार भी आर्यों की संस्कृति का प्राचीनतम तथा शुद्धतम रूप भारत में मध्यदेश में ही मिलता है। इसकी तुलना में ईरानी अथवा यूरोपीय आर्य-अवशेष बहुत बाद के हैं और आर्यावर्त्त के मध्यदेश से जितने ही दूर होते जाते हैं, उतने ही वे विकृत अवस्था में पाये जाते हैं। ईरानी संस्कृति मध्यदेशीय संस्कृति के अधिक निकट है, ग्रीक उससे दूर, जर्मन और भी अधिक दूर। इससे भी साधारणतया यही अनुमान होता है कि आर्य संस्कृति का केन्द्र भारत में मध्यदेश में था और इसका प्रभाव पश्चिम में तथा अन्य दिशाओं में यहां से ही फैला था।' —डा० धीरेन्द्र वर्मा द्वारा लिखित 'मध्यदेश', पृ० १० पटना (१९५५)।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शिक्षा ली।"[३]

वेदों में गृहित 'देवता' शब्द इतना स्थूल अर्थ वाला नहीं है जितना कि पाश्चात्य विद्वानों ने समझा है। वेदों में वर्णित देवताओं का स्वरूप इतना रहस्यमय है कि उनका प्रयोग विभिन्न अर्थों एवं भावों का द्योतक है। वेदों के अधिकारी भाष्यकार यास्काचार्य ने देवता शब्द के चार अर्थ किए हैं—दाता, दीपक, द्योतक, द्युस्थानवासी।[४] वेदों में देवता तत्त्व का प्रयोग उस सूक्ष्म, गूढ़, शाश्वत आध्यात्मिक सत्ता के लिए हुआ है जिसे आगे चलकर उपनिषदों में 'ब्रह्म' की संज्ञा से अभिहित किया गया। देवता द्विविध रूप है। उसका एक रूप गोचर है किंतु दूसरा अगोचर। उदाहरणार्थ —'विष्णु ने पार्थिव लोकों का निर्माण किया, 'उत्तर सधस्थ' अन्तरिक्ष को स्थिर किया तथा तीन क्रमों से इस विश्व को माप डाला, वह उनका एक रूप है किंतु उनका दूसरा रूप 'परम-पद' है जहाँ उनका सूक्ष्म रूप निवास करता है।[५] महर्षि अरविन्द का मत है कि सूक्तों में वर्णित देवता मनोवैज्ञानिक व्यापारों के संकेत हैं। उनका कथन है—"............अतः उन्होंने (आर्यों ने) अनधिकारी के लिए प्रभावकारी किन्तु अपूर्ण बाह्य उपासना एवं अधिकारी के लिए एक आभ्यन्तर अनुशासन के अस्तित्व का अनुमोदन किया और अपनी भाषा को ऐसे शब्दों एवं बिम्वों से परिवेष्टित किया जो अधिकारी के लिए आध्यात्मिक भाव एवं साधारण लोगों के लिए मूर्तभाव समान रूप से रखती थी।"

यदि हम निरुक्त तथा निघण्टु आदि के आधार पर वेदों का अध्ययन करें (जिनके बिना वेद अगम्य है), तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वेदों में बहुदेवतावाद का कोई अस्तित्व नहीं है। यास्क का दृढ़ मत है कि वेदों के देवता एक ही महत्त्वशालिनी शक्ति के परिचायक हैं।[७] स्वामी दयानन्द ने भी यह स्वीकार किया है कि वैदिक-दर्शन एकेश्वरवाद का निरूपण करता है। आधुनिक युग के अन्य अनेक अधिकारी भारतीय चिन्तकों ने वेदों के गम्भीर एवं स्वतन्त्र अध्ययन के पश्चात् यह प्रतिपादित किया है कि वेदों में कहीं भी बहुदेवतावाद का अस्तित्व नहीं है।

ऋग्वेद तथा अन्य वेदों से उद्धृत निम्न सन्दर्भ हमारे कथन की निस्सन्देह पुष्टि करते हैं—

'एक अग्नि बहुत प्रकार से समृद्ध होती है, एक सूर्य समस्त विश्व में अनेक हो जाते हैं, एक उषा सबको प्रकाशित करती है, यह एक (ब्रह्म) ही सब कुछ होता है।[८]

---

३. एतद्देश प्रसूतस्य सकाशाद् अग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥ —मनुस्मृति, २। २०

४. देवो दानाद्वा, दीपनाद्वा, द्योतनाद्वा द्युस्थाने भवतीति। —निरुक्त (७, १५)

५. ऋग्वेद १। १५४। १

६. 'आर्य', खण्ड-१, पृ० ६०

७. माहाभाग्यात् देवताया एक एव आत्मा बहुधा स्तूयते।
एकस्यात्मनो अन्ये देवाः प्रत्यंगानि भवन्ति॥ —निरुक्त (दैवत काण्ड), ७।४।८, ९

८. ऋग्वेद, १०, ८२, ७।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

'यही हिरण्यगर्भ सबके आगे उत्पन्न हुए, उत्पन्न होने पर ये समस्त प्राणियों के एक अद्वितीय अधिपति हुए। इस पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा आकाश को वे धारण करने वाले हैं। यज्ञ-यागों में इन्हीं के प्रसादनार्थ हम लोग हविष्य का होम किया करते हैं।[९]'

पुरुष-सूक्त के निम्नांकित मंत्रों में यह सिद्धान्त प्रस्थापित किया गया है कि यह समस्त जगत् पूर्णरूप से पुरुष (अर्थात् ब्रह्म) में अवस्थित है किन्तु पुरुष इसमें व्याप्त भी है और इससे परे भी है—

'विराट् पुरुष सहस्त्र (अनंत) शिरों, सहस्त्र चक्षुओं और सहस्त्र चरणों वाला है। यह भूमि को चारों ओर से व्याप्त करके और इससे चार अंगुल ऊपर ठहरा हुआ है।'

'जो कुछ हुआ है, और जो कुछ होने वाला है, वह सब पुरुष ही है। वह देवत्व का स्वामी है और अनन्त के ऊपर है।'

'यह सारा ब्रह्माँड उसकी महिमा है, वह तो अपनी प्रकट महिमा से भी बड़ा है। इस पुरुष का एक पाद ही ब्रह्मांड है, इसके अविनाशी तीन पाद तो दिव्य लोक में हैं।[१०]'

नासदीय सूक्त के मन्त्रों से बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक ऋषियों में एक मूल तत्व का भाव निःसन्देह उपस्थित था—

'उस समय (सृष्टि के पूर्व) असत् नहीं था और न सत् था, रज नहीं था, न व्योम था। आवरण (ब्रह्माण्ड) भी कहां था ? किसका कहाँ स्थान नहीं था ? कौन दुर्गम जल उस समय था ?'

'उस समय मृत्यु नहीं थी, अमरता भी नहीं थी। रात और दिन का भेद भी नहीं था। वायु-शून्य और आत्म-अवलंबन से युक्त केवल एक वह (ब्रह्म) था। उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं था।[११]'

यजुर्वेद के निम्न मन्त्र में समस्त सृष्टि को परम सत्ता से व्याप्त बतलाया गया है—

'इस सृष्टि में जो कुछ भी गतिशील है, वह सब ईश (परमात्मा) से व्याप्त है।[१२]'

अथर्व वेद का मत भी इस विषय में बिल्कुल स्पष्ट है। वह भी सृष्टि के मूल में

---

९. हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जात पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ऋग्वेद १०।१२१।१

इस मंत्र में 'कः' शब्द का अर्थ सुख-रूप होने से प्रजापति होता है, न कि यह प्रश्नवाचक है—जैसा कि पाश्चात्य अध्येता इसे समझते हैं।

देखिए—'अत्र किं शब्दो निर्ज्ञातस्वरूपत्वात् प्रजापतौ वर्तते।
यद्वा कं सुखम् तद्रूपत्वात् प्रजापतिः कं इत्युच्यते'—सायण भाष्य।

१०. ऋग्वेद, १०।९०।१-३

११. ऋग्वेद, १०।१२९

१२. 'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।' —यजुर्वेद, ४०।१

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

एक तत्त्व का आख्यान करता है, चाहे उसे किसी भी नाम से सम्बोधित किया जाए। यह निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है—

'काल ही में तप, काल ही में ज्येष्ठ, काल ही में ब्रह्म समाहित है। काल ही में प्रजापति का भी पिता, जो सबका ईश्वर (स्वामी) है, समाया हुआ है।'[13]

'कहा गया है कि 'वशा' की कोई अमृत रूप से और कोई मृत्यु रूप से उपासना करता है। संसार में देव, मनुष्य, असुर, पिता एवं ऋषि सब कुछ वशा में ही है।'[14]

'वह (स्कम्भ) केवल जगत् का ही कारण नहीं, प्रत्युत ब्रह्म का भी कारण है और इसीलिए वह ज्येष्ठ ब्रह्म कहलाता है, जिसमें भूमि, दिव और अन्तरिक्ष समाहित रहते हैं, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा एवं वायु अर्पित होकर रहते हैं, वही स्कम्भ है।'[15]

इस मीमांसा के पश्चात् हम निस्संदेह यह कह सकते हैं कि वैदिक ऋषियों ने मूलरूप में कहीं भी बहुदेवतावाद का निरूपण नहीं किया है। उन्होंने यत्र-तत्र-सर्वत्र विभिन्नता में एकता के दर्शन किये हैं। वैदिक ऋषि का कथन है कि 'वह परम सत्ता एक है किन्तु विद्वान् लोग उसे अग्नि, यम अथवा मातरिश्वा आदि विभिन्न नामों से पुकारते है।'[16] यह धारणा कि देवताओं की उत्पत्ति पहले हुई तथा उनसे इस कार्य-रूप जगत् की व्याख्या संभव न होने के कारण पश्चाद्वर्ती काल में उनके प्रधान रूप में पुरुष अथवा प्रजापति आदि एक तत्त्व की परिकल्पना स्थापित की गई, उचित नहीं जान पड़ती। विद्यमान तथ्यों की उपस्थिति में यह मत प्रतिपादित करना अनुचित न होगा कि वैदिक दर्शन सदैव से ही एकेश्वरवाद एवं अद्वैतवाद में आस्था रखता है।

---

१३. काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम्।
काले हि सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः॥ —अथर्व०, १६, ५२, ८

१४. वशामेवामृतमाहुर्वशां मृत्युमुपासते।
वशेदं सर्वमभवद् देवा मनुष्या असुराः पितरो ऋषयः॥ अथर्व०, १०, १०, २६

१५. अथर्व०, १०, ७, १२

१६. एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।
अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥ ऋग्वेद, १।१६४।४६

विराट्

जंगल में दो शिकारी आये। एक पेड़ के नीचे खड़े होकर बातें करने लगे। एक बोला, "जंगल तो बड़ा घना है यह!'

पेड़ ने सुना। स्वाभाविक जिज्ञासा से पड़ोसी पेड़ ने पूछा, 'ये कौन लोग हैं? किस जंगल की बात कर रहे हैं?'

'जंगल? यहां तो कोई जंगल नही।' उसने जवाब दिया, 'मैं तो इन्हें पहचानता नहीं, ये कौन लोग हैं?'

फिर तो दूसरे ने तीसरे से पूछा, तीसरे ने चौथे से, और थोड़ी ही देर में जंगल भर में यह बात फैल गई कि 'यहाँ कोई जंगल है जो बड़ा घना है!' हर पेड़-पौधा दूसरे से पूछता, 'जंगल कहाँ है?' और कोई किसी को न बता पता कि जंगल कहां है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पं० वेदभूषण "अधिष्ठाता" वेद प्रतिष्ठान
हैदराबाद, आंध्रप्रदेश

"वैदिक सुरभि"

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्/होतारम्/ऋकु० १।१।१

यह मन्त्र ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त का प्रथम मन्त्र है। सृष्टि के आदि में दयालु परमेश्वर ने अपनी अपार अनुकम्पा के वशीभूत जब चार ऋषियों के हृदय में चार वेद प्रकाशित किये तब सर्वप्रथम यही मन्त्र था, जो अपने सरल किन्तु चमत्कारपूर्ण रहस्यों को लेकर प्रकट हुआ। ईश्वर प्रदत्त वेद ज्ञान के इस प्रथम पाठ में प्रभु ने अग्नि के गुणों का ज्ञान कराया।

यहाँ एक प्रश्न स्वाभाविक रूपसे उठ खड़ा होता है कि—सर्वप्रथम प्रभु ने अग्नि का ही ज्ञान क्यों दिया? एक दृष्टि से उसे सर्वप्रथम आकाश का, फिर वायु का, तदनन्तर अग्नि का ज्ञान देना अधिक सुसंगत होता। क्योंकि सृष्टयुत्पत्ति का भी यही क्रम वैदिक विद्वानों द्वारा मान्य है। फिर अग्नि का ज्ञान सर्वप्रथम देना न्यायसंगत प्रतीत नहीं होता

प्रश्न सर्वथा उचित और युक्ति-युक्त भी है। किन्तु आजकल के शिक्षाविदों के मतानुसार और मानव की स्वाभाविक क्षमतानुसार भी प्रभु ने ज्ञान का जो क्रम रक्खा है, वह सहज और स्वाभाविक ही है।

ज्ञान के जो दो प्रकार हैं—एक दृश्य और दूसरा श्रव्य, उसमें दृश्य ज्ञान ही सरल, सुगम और सरलता से हृदय-ग्राह्य होता है, यह सिद्धान्त सर्वमान्य है। जब प्रथम बार धरती के गर्भ से मनु ने जन्म लिया और अपने नेत्र खोले तो निश्चय ही प्राची दिशा से उदीयमान वाल रवि की ज्योतिर्मान किरणों ने उसके हृदय में कौतुहल और जिज्ञासा को अवश्य जन्म दिया होगा। अग्नि रूपों की रानी है। आज भी लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने के लिये लोग अपनी दुकानों को विद्युत बल्वों से जगमगाते हैं और फिर सूर्य तो रूप का जनक है।

यही रूप है जिसका ज्ञान आजकल माण्टसरी तथा किण्डरगार्टन पद्धति से रंगों के ज्ञान द्वारा अबोध शिशुओं को सर्वप्रथम दिया जाता है। प्राचीन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

काल में गुरुशिशुओं को प्रकृति के सान्निध्य द्वारा उक्त प्रकार की शिक्षा प्रदान करते थे। इससे यह वैदिक क्रम संपुष्ट होता है। वैसे भी चेतन सृष्टि की रचना में अग्नि का क्रम ही सर्वप्रथम आता है। प्राणों की संचारिका व प्राण का मूल तत्त्व अग्नि ही है। इस परिप्रेक्ष्य एवं पर्यालोचन से अग्नि विद्या का प्रकाश सर्वप्रथम करना युक्तियुक्त, न्यायसंगत एवं पूर्ण मनोवैज्ञानिक भी है।

वेद मन्त्र सृष्टि के उन मूल सिद्धान्तों का बड़े उत्तम ढंग से प्रतिपादन करते हैं और ये सिद्धान्त अपने आप में पूर्ण एवं अकाट्य हैं।

अनेक विद्वान् वेद मंत्रों के अर्थ में कल्पना को प्रमुखता देते हैं जिसे एक दोष ही माना जाना चाहिये। काल्पनिक अर्थों की परम्परा ने ही वेद मंत्रों के अर्थ का अनर्थ कर दिया है। आज हमारे आर्य विद्वान् भी इस दोष के शिकार हो रहे हैं। यह बड़े दुःख की बात है। प्रस्तुत मंत्र ऐसे काल्पनिक अर्थों का बहुत शिकार हो चुका है कोई इसे संगठन पर तो कोई इसे नेतागिरी पर न जाने किस-किस पर घटाने का प्रयत्न करते हैं। पर महर्षि दयानन्द ने अपने वेद भाष्य में एकदम स्पष्ट कर दिया है कि इस मन्त्र में अग्नि शब्द के दो ही अर्थ हैं। देखिये महर्षि अपने ऋग्वेद भाष्य में स्पष्ट लिखते हैं कि **"इस कारण अग्नि शब्द से ईश्वर तथा दाह गुण वाला भौतिक अग्नि इन दो ही अर्थों का ग्रहण होता है।"** यद्यपि वेद मंत्रों के तीन प्रकार के अर्थ होते हैं इसका कदाचित् यह अभिप्राय नहीं है कि प्रत्येक शब्द के तीन अर्थ होने ही चाहिये। तीन अर्थ का संबन्ध विषय से है न कि शब्दार्थ से। आइये, इसी आधार पर हम इस मन्त्र के सरल किन्तु रहस्यपूर्ण अर्थ को समझने का प्रयत्न करें। पहले मन्त्र के सरल शब्दार्थ का उल्लेख कर फिर क्रियात्मक या उसके व्यावहारिक स्वरूप का विवेचन किया जायगा।

मन्त्रार्थ—**"अग्निम्"** अग्नि रूप परमात्मा को या भौतिक अग्नि को **"ईडे"** हम चाहें अथवा स्तुति करें **"पुरोहितम्"** सदा अग्रणी, आगे ले जाने वाला **"यज्ञस्य"** जीवन यज्ञ के या शिल्पविद्या यज्ञ के **"देवम्"** देव को **"ऋत्विजम्"** ऋतुओं का निर्माण करने वाले को, **"होतारम्"** आदान-प्रदान करने वाले को, **"रत्नधातमम्"** रत्नों के धारण करने वाले को।

मन्त्र में **"ईडे"** शब्द के अर्थ पर ध्यान देने की आवश्यकता है **"ईडे"** अर्थात् स्तुति करना, अथवा प्रशंसा करना, वैसे तो प्रशंसा करना बहुत सरल कार्य प्रतीत होता है पर वास्तव में यह कार्य बहुत कठिन है। क्योंकि हम किसी की प्रशंसा करने के अधिकारी तब तक नहीं हो सकते जब तक किसी के गुण, कर्म, स्वभाव को भली भान्ति नहीं जान लेते।

अग्नि का स्तवन तब हो सकता है जब परमात्मा के तथा भौतिक अग्नि के गुण, कर्म और स्वभाव को स्वयं निकट से प्रत्यक्ष देख लें। क्योंकि सुनी सुनाई बात पर भरोसा करने का परिणाम ही है कि लोगों ने मूर्ति को ही भगवान् मान लिया।

इसलिये प्रस्तुत मंत्र में अग्नि के गुण, कर्म, स्वभाव का वर्णन है या यूं कहें कि जिस शब्द समूह में किसी पदार्थ विशेष के गुण, कर्म, स्वभाव की मर्यादित व्याख्या हो वह उस पदार्थ की परिभाषा कहाती है। हम निस्संकोच कह सकते हैं कि प्रस्तुत मन्त्र जड़ और चेतन दोनों प्रकार की अग्नियों की परिभाषा है। आइये, अब हम इस मन्त्र के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आधार पर अग्नि की परीक्षा करें या उसके गुण, कर्म, स्वभाव को जानें। जो वस्तु जैसी है उसका वैसा ही वर्णन करना किसी का स्तवन या प्रशंसा कहाती है। (देखिये महर्षि रचित आर्योद्देश्य रत्नमाला)

प्रस्तुत मन्त्र में अग्नि की प्रशंसा का उल्लेख है। इसकी व्याख्या समझने से पहले यह समझ लेना आवश्यक है कि इस ब्रह्माण्ड में तीन प्रकार की अग्नि व्याप्त है।

द्युलोक में चमकता सूर्य, अन्तरिक्ष लोक में मेघमंडल में व्याप्त विद्युत्, और भूलोक निवासिनी यह अग्नि जो हमारे चूल्हों में जलाई जाती है, इस प्रकार से उक्त तीन प्रकार की अग्नि ब्रह्माण्ड में व्याप्त है।

यह बात भी सर्वविदित है कि **"यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे"** के अनुसार पिण्ड और ब्रह्माण्ड में एकरूपता है। इन्हीं तीन प्रकार की अग्नियाँ हमारे शरीर में भी हैं। एक अग्नि शरीर के भूलोक में, जिसे हम जठराग्नि कहते हैं। इसका केन्द्र नाभि है। दूसरी अग्नि शरीर के अन्तरिक्ष भाग हृदय में रहती है, जिसे हम हृदयाग्नि या प्राणाग्नि कहते हैं। तीसरी अग्नि जो शरीर के द्युलोक में अर्थात् मस्तक के दक्षिण भाग में मेधाग्नि के रूप में व्याप्त है। इस प्रकार ये छः अग्नियाँ ब्रह्माण्ड और पिण्ड की हुईं। और सातवीं अग्नि है जिसे हम महाग्नि या चैतन्याग्नि भी कह सकते हैं। यह ज्योतिरूप परम पिता परमेश्वर है।

अब हमें देखना होगा कि प्रस्तुत मंत्र की परिभाषा कहाँ तक इन अग्नियों में चरितार्थ होती है?

सर्वप्रथम सूर्य को मंत्र की कसौटी पर कस कर देखें। मंत्र में अग्नि के पाँच गुण बतलाये गये हैं—पहला गुण है **"पुरोहितम्"** अग्रगामी, सूर्य की रश्मियाँ सदैव सीधी और सदा अग्रगामिनी ही होती हैं। **"यज्ञस्य देवम्"** जो यज्ञ का देवता हो। यह सूर्य, यज्ञ का—इस सृष्टि-यज्ञका—प्रमुख देवता है, जिसके बिना यह सृष्टि क्षण भर भी टिक नहीं सकती। तीसरा गुण है **"ऋत्विजम्"** ऋतुओं का निर्माण करने वाला। यह तो स्पष्ट ही है कि ऋतु-चक्र का निर्माण सूर्य ही करता है। चौथा गुण है **"होतारम्"** आदान-प्रदान की क्षमता। जल वायु का, शीतोष्णता का आदान-प्रदान यही सूर्य करता है। और पाँचवां गुण है **"रत्न धातमम्"** वर्णों का, रंगों का धारण करने-कराने वाला भी वही है। वनस्पतियों, फूलों, त्वचाओं को रंगने वाला यही सूर्य है।

अब विद्युत् को लीजिये। **"पुरोहितम्"** इसी अग्रगामिता के गुण के कारण विद्युत् तारों में संचारित होती है। स्प्रे द्वारा उसके प्रवाह को कितना भी अधोगामी बनाने का प्रयत्न किया जाय, फिर भी उसकी शिखा उपर की ओर पलट कर अपने स्वभाव का प्रदर्शन कर ही देती है। **"यज्ञस्य देवम्"** जल में जीवनी-शक्ति की मूलाधार यही विद्युत् है। और ऐश्वर्य की देवी उद्योग, यन्त्र के संचालन का कार्य भी यही विद्युत करती है। वनस्पतियों में रस संचरण का कार्य भी यही विद्युत् करती है। बादलों से जल का द्रवण, जल में गति संचरण, जल का हिम में परिवर्तन व उसका द्रवण आदि कार्य सब इसी अन्तरिक्ष यज्ञ की देवी के द्वारा संपन्न होते हैं। इसी विद्युत द्वारा रैफ्रिजरेटर जल को हिम में रूपायित करने में सहायक सिद्ध होता है। **'ऋत्विजम्'** और यही विद्युत् का भी निर्माण करती है। अब तो इसके प्रत्यक्ष प्रमाण सर्वत्र देखे जा सकते हैं। इसे ही आजकल वातानुकूलन कहते हैं। यह वातानुकूलित स्थिति विद्युत

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

द्वारा संभाव्य है। "होतारम्" से अभिप्राय खींचने और फेंकने की क्षमता है। कुएं में से जल खींचने का कार्य ट्यूबवैल द्वारा जो संपन्न होता है, उसका कारण विद्युत् की होतृत्व शक्ति ही है, और इसी विद्युत् से शतविध कार्य आदान-प्रदान की क्रिया वाले संपन्न होते हैं। "रत्नधातमम्" विद्युत् के द्वारा अनेक धातुओं के रंग परिवर्तित किये जा सकते हैं। और नाना प्रकार के वर्ण आरोपित करने में भी विद्युत् परम सहायिका है। मोटर आदि पर पक्का रंग संयुक्त करने में भी विद्युत् सहायिका होती है।

विद्युत् में जितने भी गुण हैं वे सब अग्नि में भी हैं किन्तु उनकी क्षमता में अन्तर है। सूर्य की क्षमता प्रथम श्रेणी की है। विद्युत् की क्षमता द्वितीय श्रेणी या मध्यम श्रेणी की है और अग्नि की क्षमता तृतीय अथवा साधारण श्रेणी की है। सूर्य अपने पूरे सौरमंडल को वातानुकूलित करता है तो विद्युत् बड़े-बड़े भवनों को वातानुकूलित कर सकती है और साधारण अग्नि सिगड़ी आदि के माध्यम से अपनी अल्प क्षमता से एक छोटे से कमरे की वायु को गर्म कर देती है। इस प्रकार अग्नि की लपट भी सदा ऊपर ही जाकर "पुरोहितम्" साधारण-सा लौकिक व्यवहार भी उसके बिना नहीं होता इससे "यज्ञस्य देवम्" उष्णता आदि बढ़ाने से "ऋत्विजम्" वाष्प द्वारा खीचने फैंकने की क्षमता से "होतारम्" और सुवर्ण, चाँदी आदि को चमकाने से "रत्नधातमम्" कहाती है।

यह है हमारे प्रभु प्रदत्त वेद के पहले मंत्र का ज्ञान। आइये, अब हम इन कसौटियों पर पिण्ड की अग्नियों को कसें।

शरीर का द्युलोक है हमारा यह सिर। इसमें सूर्य रूप में विद्यमान है हमारा मस्तिष्क या जिसे हम बुद्धि यन्त्र कहते हैं। यही बुद्धि यन्त्र इस पिण्ड शरीर को संतुलित कर संचालित करता है। उत्तम बुद्धि ही इसकी पुरोहित (आगे ले जाने वाली) है चक्कर खाना, पैरों का डगमगाना, पैरों द्वारा शरीर का भार न उठा पाना आदि विकार इस यन्त्र के विकृत होने से ही हो जाते हैं। यही बुद्धियन्त्र इस शरीर यन्त्र का देवता है और मानसिक व्यापार तथा भय से कंपन, काम से उद्दीपन, शोक से शैथिल्य या इसके विपरीत उत्साह, हर्ष आदि द्वारा शरीर में वातावरण का निर्माण करने से यही बुद्धि ऋत्विजम् कहाती है। लौकिक व्यवहार में लेने-देने की हर चेष्टा बिना कामना के संभव नहीं, कामना का सीधा संबंध बुद्धि से है। अतः यही इस प्राणमय शरीर की होता है। यही बुद्धि गुणों व अवगुणों के द्वारा मनुष्य ही क्या प्राणीमात्र को चमकाती, प्रशंसित या कलंकित कर देती है। इसलिए यह "रत्नधातमम्" कहाती है।

पिण्ड में अन्तरिक्ष का स्थान हृदय का है। प्राणाग्नि का निवास इसमें ही होता है। यह प्राणमय हृदय यन्त्र "पुरोहितम्" है। पवित्र हृदय की प्रेरणा से ही मनुष्य आगे बढ़ता है। इसी यन्त्र का कार्य रक्त को आगे धमनियों में धकेलना भी है। हृदय की धड़कन के अवरुद्ध होते ही यह पिण्ड-यज्ञ समाप्त हो जाता है; इसलिए ही इसे "यज्ञस्य देवम्" पिण्ड-यज्ञ का देवता भी कहा गया है। जो क्षमता ब्रह्माण्ड में विद्युत् की है वही क्षमता पिण्ड में हृदय की है "ऋत्विजम्" हृदय भी वातावरण निर्माण करता है घबराहट, शान्ति आदि का निर्माण हृदय ही करता है। इस प्रकार यह ऋतुज ही है "होतारम्" यह हृदय ही प्रेम, कृपा का आदान-प्रदान करता है, और यह हृदय ही शुद्ध रक्त को फेंकने, रक्त के मल को साफ़ करने, तथा श्वास के आदान-प्रदान के रूप

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में "होता" का कार्य भी करता है। "रत्नधातमम्" यही हृदय आत्मा रूपी रत्न को धारण किए रहता है। गुण ग्राहिता के कारण भी वह रत्नधातमम् कहाता है। त्वचा के वर्ण का निखार भी हृदय पर आधारित है।

पिण्ड का भूलोक है हमारा पेट। इसका विस्तार जठराग्नि से लेकर उपस्थ तक है। पृथु विस्तारे इसीलिए इसका नाम है पृथ्वी लोक। इसमें मुख्य यन्त्र है जठराग्नि। यही अग्नि है जो उदर यन्त्रों का संचालन करती है। इसका प्रथम गुण है "पुरोहितम्" जो कुछ हम इसमें डालते हैं यह उसे पकाकर आगे को बढ़ा देता है। पुरोहित जी महाराज का भी यही कार्य होता है। परिवार, राष्ट्र और समाज को आगे बढ़ाना, उन्नति के पथ पर यजमान को ले जाना। जब जठराग्नि बिगड़ती है तो पूरा शरीर विकृत हो जाता है। यह जठराग्नि हमारे शरीर की पुरोहित अर्थात् स्वास्थ्य को आगे बढ़ाती है। "यज्ञस्य देवम्" यह हमारे शरीर यज्ञ की देवता है। इसके शान्त होते ही धीरे-धीरे यह शरीर भी शान्त हो जाता है। "ऋत्विजम्" यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या जठराग्नि ऋतु का भी निर्माण कर सकती है ? बड़ी विनम्रता से हमारा उत्तर है—हाँ। देखिये तमतमाती धूप में जब हमारे शरीर से पसीना बहता है उस समय भी कभी-कभी हम शिकायत सुनते हैं कि मुझे जाड़ा लग रहा है, ऊपर कम्बल उढ़ा दीजिए। लगता है मुझे जाड़ा बुखार आ गया है। कड़कड़ाती शीत में ५-५ डिग्री तापमान ज्वर के रूप में बर्फ की पट्टी मस्तक पर रखने की नौबत आ जाती है। इसका कारण यही जठराग्नि ही तो है। लू के लगने तथा ठंड खा जाने का मुख्य कारण भी हमारी जठराग्नि है। "होतारम" यही जठराग्नि इस शरीर यज्ञ की होती है। अन्न से रस का ग्रहण और निस्सार के परित्याग का मूल भी जठराग्नि ही है। "रत्नधातमम्" शरीर ओज, तेज, ललिमा, दीप्ति सबका कारण यही जठराग्नि है।

किसी को रक्तिम वर्ण से चमका देना और किसी को पीले रंग में बदल डालना इसी जठराग्नि का ही काम है। खाए अन्न के रस को लाल रंग में कौन बदल डालता है ? यह इसी जठराग्नि का जादू है। हमारे शरीर में सभी वर्ण विद्यमान हैं, और शरीर की अग्नि ही उनका निर्माण करती है। शरीर में निखार इसी के द्वारा आता है। इसीलिए इसे रत्नधातमम् कहा है।

सचमुच वेद का ज्ञान कितना विज्ञान से परिपूर्ण और गागर में सागर की कहावत को चरितार्थ करने वाला है।

अब अग्नियों की अग्नि जिसे महाग्नि कहना चाहिए वह है सृष्टि संचालक परमात्मा "अग्निम्" इन छहों अग्नियों के रहस्य को हम पुरुषार्थ पूर्वक "ईडे" प्राप्त करें। वहां यह मन्त्र हमें हमारे जीवन लक्ष्य उस आनन्द घन प्रभु को प्राप्त करने की प्रेरणा देता है वहां उसके स्वरूप और उसकी प्राप्ति के परिणामों की भी बात प्रस्तुत मंत्र में प्रकट कर दी गई है।

"पुरोहितम्" अहह, वही अग्नि रूप प्रभु इस सृष्टि-चक्र को चलाता है। प्रलय से पूर्व जब सृष्टि का निर्माण ही न हुआ था तब भी वह सर्वश्रेष्ठ पुरोहित विद्यमान था। हित कर्त्ताओं में सबसे सदा आगे रहने वाला यह कितना और कैसा अद्वितीय है। "यज्ञस्य देवम्" इस ब्रह्माण्ड यज्ञ के महान् देव भी वही हैं अर्थात् वही सृष्टिकर्त्ता हैं। "ऋत्विजम्" एक सृष्टि के बाद दूसरी, तीसरी इन अनन्त सृष्टियों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के ऋतुओं के निर्माता भी वही हैं। "होतारम्" उत्पत्ति और प्रलय, समस्त ऐश्वर्यों के देने औरलेने वाले, कर्मानुसार सुख-दुःख, जीवन-मरण, तथा अन्य संपूर्ण भोग्य पदार्थों के देने-लेने वाला ही सबका या यूँ कहें कि इस महान् सृष्टि यज्ञ का होता है। "रत्नधातमम्" इन संपूर्ण जगमगाते लोक-लोकान्तरों का धारण कर्त्ता या सर्वाधार वही प्रभु है। हम सब मिलकर अत्यन्त प्रयत्न से उसको प्राप्त करें।

●

पापा-डैडी

शिष्य को समझा रहे, त्रिगुणाचार्य त्रिशूल,
'डैडी' कहने की प्रथा संस्कृति में प्रतिकूल !
संस्कृति के प्रतिकूल, लाड़ली लड़की भोली,
करके नीची नज़र, मन्द सप्तक में बोली—
पापा कहने से, हमको मुश्किल आती है,
टकराते हैं होंठ, लिपिस्टिक हट जाती है।

●

रसगुल्ले सब खा गया और मिठाई छोड़,
मम्मी से कहने लगा, मुन्ना नाक सिकोड़,
मुन्ना नाक सिकोड़, सख्त हैं लड्डू ऐसे,
तुम्हीं बताओ मम्मी इनको तोड़ूं कैसे ?
'तोड़ लिए तेरे पापा ने चार विधायक,
तुझसे लड्डू नहीं टूटता है नालायक !'

—काका हाथरसी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वामी दयानन्द और कर्मवाद

प्रो० श्रीराम शर्मा

जिस समय स्वामी दयानन्द ने अपना कार्य आरम्भ किया उस समय भारत में सब मता-मतान्तर कर्मवाद पर सहमत थे। वेदान्ती, वैष्णव, शैव, स्मार्त, शाक्त, जैन और अन्य भारतीय मत-मतान्तरों वाले सब ही इस बात पर एकत्रित हो जाते थे कि मनुष्य अपने किये हुए कर्मों का फल भोगता है।

कुछ नए सुधारक विचारवादी ठीक ही कर्मवाद को छोड़ बैठे थे। ब्रह्म समाजी कर्मवाद को स्वीकार नहीं करते थे। पश्चिमी विचारधारा और ईसाइयत की लहर में वहकर उन्होंने इस संसार में मनुष्यों की भिन्नता के प्रश्न से अपनी आंखें बन्द कर ली थीं। मुसलमानों और ईसाइयों के पीछे चलकर वे यही कहते थे कि मनुष्य को यही एक जीवन मिला है इसके पीछे कुछ नहीं। परन्तु आश्चर्य की बात यह थी कि जहां वे मनुष्य के इस जीवन से पहले कोई तथ्य नहीं समझते थे वहां मुसलमानों ईसाईयों के पीछे चलकर स्वर्ग के एक अनन्त जीवन का और इसी प्रकार नरक के एक जीवन का नियम मानने के लिए उद्यत थे। मुसलमानों और ईसाईयों की भाँति वे यह बतलाने में असमर्थ थे कि इस अनन्त स्वर्ग या नरक में रहने वाले सारे 'मनुष्य' एक ही स्थिति में थे या नहीं। यदि ये आत्मायें भिन्न-भिन्न स्थितियों में थीं—जैसा कि कुछ विचारशील ईसाई मानने के लिए कहीं-कहीं उद्यत प्रतीत होते थे तो क्या उन 'आत्माओं' के लिए अपनी स्थिति को बदलना सम्भव था? यह सम्भावना तो फिर कर्मवाद की ओर ही ले आती थी। उनका ध्येय मनुष्य को एक ऐसे चक्र में डालना था जिसमें पढ़कर थोड़े-से काल के जीवन के बदले अनन्त सुख या दुःख प्राप्त हो जावे यह समझना कठिन हो जाता था।

स्वामी दयानन्द ने अपने जीवन काल में कई स्थानों पर ब्रह्मसमाज को आर्य समाज के रूप में परिवर्तित करने का यत्न किया। आर्य समाज की स्थापना से पहले भी वे कलकत्ते में ब्रह्म समाजियों से बातचीत करते रहे और सम्भवतः उनको अपने सिद्धान्तों पर लाने का यत्न करते रहे। दो बातों पर यत्न असफ़ल हुए प्रतीत होते हैं। वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानने के लिए ब्रह्म समाजी उद्यत न हों यह समझना आसान है। राममोहन राय, देवेन्द्रदाथ ठाकुर और केशवचन्द्र सेन उनके गुरु थे। वेदों के उपदेश को मानने के स्थान पर इन जीवित गुरुओं के शब्द पर अपने आप को आधारित करना आसान था। परन्तु उनका कर्मवाद को न मानना एक और ही स्थिति खड़ा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करना था। इसको समझने के लिए उस समय के कर्मवाद का रूप जानना आवश्यक है।

सारे मत-मतान्तर इस बात पर तो सहमत थे कि मनुष्य को उसके किए हुए कर्मों का फल मिलेगा, परन्तु यहां साधारणतया एक आपत्ति खड़ी कर दी गई थी। भक्त सन्तों ने कर्म पर बहुत जोर दिया परन्तु जब वह भक्ति की लहर में बहे तो उन्होंने ईश्वर-भक्ति को—उस रूप में जिसे वह वर्णन करते थे—इतना ऊंचा स्थान दे दिया कि उसके द्वारा सब पाप नष्ट हो जाते थे। यह सत्य है कि उनके द्वारा वर्णित की हुई भक्ति हरेक से आराधी नहीं जा सकती थी। परन्तु यह भी सत्य है कि उन्होंने हरेक मनुष्य के लिए केवल भक्ति को अन्य कर्त्तव्यों से ऊपर उठाया।

भक्ति का एक और मार्ग नाम स्मरण बना। किसी विशिष्ट नाम के स्मरण या जप में भक्ति समाहित कर दी गई। केवल उस स्मरण से ही सब पाप नष्ट होने का सिद्धान्त चला। कहीं ये नाम गुरुओं द्वारा मन्त्र के रूप में उनके अनुयायियों को दिये जाते थे, कहीं धर्म ग्रंथों में उनके सम्बन्ध में आदेश दिया गया था। इस नाम वाद को इतना ऊँचा उठाया गया कि जहां एक वेश्या इसलिए मुक्त हो गई कि वह अपने तोते द्वारा निकाले हुए शब्द नाम को सुनती रही, वहां एक और कुकर्मी इस लिए मुक्ति पा गया कि मरते समय उसने अपने पुत्र का नाम लिया जो नारायण नामधारी था।

कर्मवाद एक और स्वरूप में भी हमारे लिए विषकारक बन रहा था। ध्येय यही बन गया था कि मनुष्य का सारा जीवन उसके पिछले जन्म के कर्मों का फल है। इस फल के अंकुर पिछले जन्म में बोये गए थे। इस जन्म में पेड़ बनकर उनपर जो फल आए उनको रोका नहीं जा सकता था। यह ध्येय फलित ज्योतिष ने और दृढ़कर दिया था। जन्म पत्रों के द्वारा पिछले जन्म के फलों को ही ढूंढ़ा जा सकता था। यद्यपि ज्योतिषाचार्यों ने सम्भवतः ज्योतिष पर विश्वास रखने वालों की सुगमता के लिए या आप धन कमाने के ध्येय से पिछले जन्मों के कर्मों को बदलने का एक सिलसिला बांध रखा था। यह भी कर्मवाद पर एक आघात था। यदि पूजा आदि से पिछले जन्म के कर्मों का फल बदल सकता है तो यह विश्वास कि इस जन्म के कर्मों का यथोचित फल होगा, ढीला हो जाता है।

भक्ति और नाम के मार्ग के अतिरिक्त एक और नई सूझ भी निकल पड़ी थी। मुक्ति पाने के कई बहुत आसान रास्ते निकाल दिए गए थे। जो काशी में मरे वह मुक्त हो जाता था। कबीर तो इस सिद्धान्त से इतना डरा कि उसने काशी छोड़ दी। गंगा में नहाने से मुक्ति मिल जाती थी। एकादशी का व्रत रखने से सर्व पाप नष्ट हो जाते थे। आदि ग्रन्थ में ६८ तीर्थ वर्णित हैं जिन पर जाकर मुक्ति खरीदी जा सकती थी। धर्म के बाहरी चिन्ह यदि मुक्तिदायक नहीं थे तो मनुष्य को मुक्ति के पथ पर तो डाल ही देते थे।

अचम्भे की बात नहीं कि पढ़े-लिखे हिन्दुओं को जिन्होंने इस बात पर विचार किया कर्मवाद को मानने में झिझक हुई। पश्चिमी विद्वानों का तो जो बहुधा ईसाई थे इस बात पर विश्वास था ही नहीं। इसलिए उनके लिए इसको छोड़ना और भी सुगम हो गया। जो लोग स्वेच्छाचारी नहीं बने वे हिन्दू-धर्म से इन भ्रान्ति फैलाने वाले विश्वासों के कारण दूर हटे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उस समय के कर्मवाद ने केवल हमें कर्महीन ही नहीं बना दिया था अपितु समाजके कुछ वर्गों के हित के लिए सोचने के भी अयोग्य बना दिया था। किसी आलसी मनुष्य के लिए अपने आलस्य को ठीक ठहराना बड़ा आसान था। जो उसके प्रारब्ध में है, जो उसके माथे पर लिखा हुआ है, वह तो उसे मिलेगा ही। फिर कोई परिश्रम करना केवल मूर्खता ही हैं। समाज का दरिद्र और अन्य प्रकार से दुःखित अंग भी किसी सहायता के योग्य नहीं समझा जाता था। दरिद्रता और सब दुःख तो कर्मों के फल ही हैं। उस फल को बदलना मनुष्य के अधिकार से बाहर ही नहीं था अपितु उसे अनधिकार चेष्टा समझा जाता था। स्वामी रामकृष्ण परमहंस जैसे योगी और विवेकानन्द जैसे विद्वान भी यह कहने से न रुक सके कि आप किस लिए दुनियां के दुख और पीड़ा पर विचार कर रहे हैं। यह ब्रह्माण्ड उस परमात्मा का है जैसे वह चाहेगा इसे रखेगा।

स्वामी दयानन्द ने कर्मवाद का यथार्थ स्वरूप हमारे सामने रखा। उन्होंने हमें बताया कि जीवन भर में जो हम करते हैं वह सारा पिछले जन्म के कर्मो का फल नहीं हो सकता। मनुष्य कोई ऐसी घड़ी नहीं जिसको सृष्टि के आदि में उसके कर्मो ने चाबी दी हो और उसके द्वारा वह जन्म-जन्मान्तर में फल भोगता फिरे। यह तो ऐसी अयुक्तियुक्त बात थी कि कहते ही इसका असत्य प्रकट हो जाता था। हिन्दू संस्कृति की पुरानी परम्परा के अनुसार उन्होंने यह बतलाया कि यद्यपि हम इस भाग को जान नहीं पाते परन्तु हमारा जीवन तीन प्रकार के कर्मो से भरा पड़ा रहता है। कुछ कर्म तो वे हैं जो हम अपने पिछले जन्म या जन्मों के फ़लस्वरूप कर पाते हैं। जब पादरी स्काट ने एक समय स्वामी दयानन्द से कर्म सम्बन्धी विषय पर बातचीत की तो ऋषि दयानन्द ने उससे पूछा कि आप लंगडे क्यों पैदा हुए ? स्काट साहब के पास ईसाई धर्म के अनुसार इसका उत्तर इसके सिवाय कोई नहीं था कि परमात्मा ने ऐसा निश्चय किया। क्यों ? यह वह बतला न पाये। ऋषि दयानन्द ने उनको समझाया कि पिछले कर्मों के फलस्वरूप परमात्मा का यह निश्चय ठीक समझा जा सकता है। कुछ और कर्म ऐसे हैं जिनका फल हम इसी जन्म में पा लेते हैं। एक रोगी अपने पथ्य को छोड़ कर कुछ और खा बैठता है तो उसका रोग बढ़ जाना ही संभव है। जो विद्यार्थी ठीक प्रकार से विद्याध्ययन नहीं करता अथवा परीक्षा में ठीक उत्तर नहीं देता उसका फेल हो जाना सम्भवतः उसके इस जन्म में किये हुए कर्मों का ही फल है। ऐसे कई और उदाहरण दिए जा सकते हैं।

हमारे जीवन का कुछ भाग ऐसा भी हो सकता है जिसमें हमें कर्त्तव्य पालन पर या पथभ्रष्ट होने का परिणाम इस जन्म में दिखाई न दे। कर्मवाद बताता है कि सम्भवतः हमारे इन अच्छे या बुरे कर्मो का फल हमें अगले जन्मों में मिलेगा। एक दुष्ट को फलते देखकर या एक धार्मिक सज्जन को कष्ट पाते देखकर मनुष्य को दुःख तो होता है परन्तु उसको कर्मवाद द्वारा ही ठीक प्रकार समझा जा सकता है।

भारत से बाहर के मतों ईसाइयत और इस्लाम ने मुक्ति का एक ही मार्ग अपनाया। इन धर्मो के प्रवर्तकों पर विश्वास लाने से ही मुक्ति प्राप्त हो जाएगी। इस विश्वास से एक ईसाई या मुसलमान के सारे पाप धोये जाने सम्भव समझे जाते थे। हिन्दुओं के इस प्रकार के विश्वासों पर तो ईसाई और मुसलमान प्रहार किया करते थे परन्तु ये यह कमी समझ न पाये कि उनके अपने विश्वास हिन्दुओं के ऐसे विश्वासों जैसे ही हैं। स्वामी दयानन्द भारतीय परम्परा पर चलते हुए यह मानने के लिए उद्यत नहीं थे कि संसारी राजाओं या हाकिमों की भांति परमात्मा ने भी अपने कुछ ऐसे पात्र

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बनाए हैं जिनके कहने मात्र से मनुष्य के पाप सब मिट जाते थे। वह कभी यह मान न पाये कि पापों का फल टल सकता है। ईसाइयों और मुसलमानों से शास्त्रार्थ करते समय वह इस बात पर ही बल दिया करते थे। भारतवर्ष में भी उस समय कुछ नए मत प्रचलित हुए थे जिनके चलाने वाले और गुरु मुहम्मद साहब और ईसा की भांति अपने आपको अपने अनुयायियों के पाप क्षमा करवाने की शक्ति रखने का दावा करते थे। राधास्वामियों के गुरु लाला शिवदयाल, कूकों के गुरु भाई रामसिंह, अकलकोट के स्वामी और कुछ दूसरे गुरु भी स्थान-स्थान पर मुक्ति देने के नये केन्द्र बन गए थे। (लेखराम, ७२६) ।

सिफारिश की इस रीति के साथ का ही एक और प्रसंग भिन्न धर्मों में प्रार्थना और उपासना द्वारा उठाया गया। जहां एक ओर परमात्मा सिफारिश मानने वाले समझे जाते थे तो दूसरी ओर यह माना जाता था कि वह अपनी प्रशंसा और लोगों की प्रार्थनायें सुनकर मोम हो जाते हैं। ऋषि दयानन्द ने कर्मवाद को यहाँ भी प्रस्तुत और बतलाया कि केवल प्रार्थना से कोई लाभ नहीं हो सकता। "ईश्वर की भक्ति या प्रार्थना से पूर्वकृत पापों का दण्ड नहीं चुकता।" "पश्चात्ताप से भी पाप क्षय नहीं होता" परन्तु आगे के लिए पाप करना बन्द हो जाना सम्भव है (पूना प्रवचन, ५७,६३) ।

एक और नया पथ भी मुक्ति का बहुत देर से चला आ रहा था। कई शताब्दियों पहले बुद्ध ने कर्मो के स्थान पर उस समय प्रचलित यज्ञ पद्धति को मुक्ति का साधन समझने वालों पर कठोर आघात किए। परन्तु कर्मकाण्ड का यह रास्ता चलता ही रहा। स्वामी दयानन्द ने अपना ध्येय कई स्थानों पर स्पष्ट रूप में बताया। अग्निहोत्रादि यज्ञ करने से जलवायु की शुद्धि द्वारा सुख होता है, नजात नहीं मिल सकती। यह तो शारीरिक सुख और परोपकार के जरिए हैं (लेखराम, ६७३) । "गायत्री जाप (गायत्री के अर्थ के अनुसार आचरण करने) में अच्छा फल होता है। केवल जप मात्र से बुरे कर्मों के फल नष्ट नहीं होते" (लेखराम, ४८९) जब स्वामी जी उदयपुर में थे तो उन्होंने माला जपने को व्यर्थ बतलाया। केवल जाप से कुछ नहीं बनता। परमात्मा के जिस नाम का स्मरण किया जावे "इस नाम से जो इसका अर्थ है कि जैसे न्यायकारी नाम से जो इसका अर्थ है कि जैसे पक्षपात रहित होकर परमात्मा सबका यथावत् न्याय करता है वैसे उसको ग्रहण कर न्याययुक्त व्यवहार सदा करना अन्याय कभी न करना" (सत्यार्थ प्रकाश, एकादश समुल्लास) ।

कर्मवाद की व्याख्या करते हुए स्वामी दयानन्द ने उस समय के कर्म सम्बन्धी सारे मिथ्यावादों का खण्डन किया। न केवल उन्होंने मनुष्य को अपने जीवन के हित के लिए कर्मों पर ही विश्वास रखने का आदेश दिया, उन्होंने मनुष्य को समाज के दलित और दीन भागों के हित के लिए कार्य करने के लिए भी उपदेश दिया। आर्य समाज के नियमों में उन्होंने आर्य समाजियों को सारे समाज के हित के लिए उपदेश दिया। इस प्रकार उन्होंने मनुष्यमात्र को कर्ममय जीवन व्यतीत करने के मार्ग पर चलाया।

एक और मिथ्या विश्वास का भी स्वामी दयानन्द ने भली भाँति खण्डन किया। कहा जाता था कि कर्म बन्धन के हेतु हैं। इसलिए कर्म न करने से जन्म-जन्मान्तर के चक्कर से छुट्टी मिल जावेगी। सन्यासियों ने तो यह कहने में मुक्ति मानी कि उनको कोई कर्म नहीं करना चाहिए। परन्तु आश्चर्य की बात थी कि अपने पेट की पूर्ति के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लिए वे घर-घर जाकर भीख मांगते थे। स्वामी दयानन्द ने बतलाया कि ऐसा मिथ्यावाद देश को नष्ट कर रहा है। कोई मनुष्य भी कर्म किये बगैर जीवित नहीं रह सकता, इसलिए कर्म न करने का ढिंढोरा पीटना व्यर्थ है। अपने उदाहरण से उन्होंने बताया कि सन्यासी को देश और जाति के हित के लिए काम करते रहना चाहिए। आर्य समाज के नियमों में उन्होंने आर्य समाज को एक कार्यमय संस्था बनाया। शोक की बात है कि आज फिर समाज का कुछ भाग उन्हीं पथों पर चलने का यत्न कर रहा हैं जिन पर चलने से स्वामी जी ने उसको रोका था। आर्य समाजी पत्र अब दैनिक भविष्य के समाचार अपने पाठकों को नित्य देते हैं। मैंने अभी पढ़ा कि आज सफलता मेरे अंग-संग रहेगी और मुझे धन मिलेगा। सम्भवतः सम्पादक महोदय मेरा यह लेख प्रकाशित कर देंगे, सफलता हो गई ! परन्तु धन की प्राप्ति का मामला कुछ टेढ़ा है। पता नहीं इस राशि वाले कितने पाठक धन की प्रतीक्षा करते-करते सो जायेंगे।

दिल में खोट

एक मार्ग चलती हुई बुढ़िया जब काफ़ी थक चुकी तो पास से जाते हुए एक घुड़सवार से दीनतापूर्वक बोली—

"भैया, मेरी यह गठरी अपने घोड़े पर रख ले और जो उस चौराहे पर प्याऊ मिले, वहां दे देना। तेरा बेटा जीता रहे, मैं बहुत थक गई हूं, मुझसे अब यह उठाई नहीं जाती।"

घुड़सवार ऐंठकर बोला—"हम क्या तेरे बाबा के नौकर हैं, जो सामान लादते फिरें ?" और यह कहकर वह घोड़े को ले आगे बढ़ गया। बुढ़िया विचारी धीरे-धीरे चलने लगी। आगे बढ़ कर घुड़सवार को ध्यान आया कि गठरी छोड़कर बड़ी ग़लती की गठरी। उस बुढ़िया से लेकर प्याऊ वाले को न दे यदि मैं आगे चलता बनता, तो कौन क्या कर सकता था ? यह ध्यान आते ही वह घोड़ा दौड़ाकर फिर बुढ़िया के पास आया और बड़े मधुर वचनों में बोला—

"ला बुढ़िया माई, तेरी यह गठरी ले चलूं, मेरा इसमें क्या बिगड़ता है, प्याऊ पर देता जाऊँगा।"

बुढ़िया बोली—"नहीं बेटा, वह बात तो गई, जो तेरे दिल में कह गया है वह मेरे कान में भी कह गया है। जा अपना रास्ता नाप ! मैं तो धीरे-धीरे पहुँच ही जाऊँगी।"

घुड़सवार मनोरथ पूरा न होता देख अपना-सा मुँह लेकर चलता बना।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विद्वानों का आशीर्वाद

मान्य विद्वद्वर ! सादर नमस्ते

मेरे पत्र के उत्तर में आपका उदारता से परिपूर्ण पत्र २७-७७३ का प्राप्त-कर प्रसन्नता हुई। जन-ज्ञान की अंग्रेजी और हिन्दी के वेषों में एक एक प्रति उपलब्ध हुई। मुझे इन्हें देख कर गर्व हुआ है कि जब महामान्य शिरोमणि आर्य नेता भौतिकता की चकाचौन्ध में अन्धे होकर और मार्गच्युत हो कर नेता गिरी की लोकेषणा में व्यस्त हैं उस समय भी एक दयानन्द का शिष्य उनकी दिव्य पताका को विश्व-भर में फैलाने के लिए कृत–संकल्प ही नहीं अपितु समर-क्षेत्र में उतरा है-परन्तु मैं ऐसे कर्म योगी आपको सूचना देना चाहता हूँ कि आप समर-भूमि में अकेले नहीं होंगे। दयानन्द के विनीत शिष्य आपके सहयोगी होंगे।

मेरा पहला पत्र अंग्रेजी में लिखा हुआ आपको मिल चुका है। उसमें मैंने लिखा था कि इस भगीरथ–प्रयास में मैं अपना सहयोग देना धर्म मानता हूँ। जो सेवा मुझ से आप लेना चाहेंगे-मैं निःसङ्कोच दूँगा। "विद्वानेव हि जानाति विद्वज्जन-परिश्रमम्"।

—डा० परमानन्द

पूर्व निर्देशक भाषा
विभाग पंजाब व हरियाणा राज्य

प्रिय भारतेन्द्र नाथ जी !

मैं गत ६-७ मास से बहुत अस्वस्थ रहा अब कुछ ठीक हूँ। अस्वस्थता के दिनों में मैं "जनज्ञान" नहीं पढ़ सका क्योंकि लिखना पढ़ना मना था, अब लाइब्रेरी से लेकर पिछले कई अंक आद्योपान्त पढ़े। बीच में छोड़ने को मन ही नहीं होता था क्योंकि आपकी सम्पादकीय टिप्पणियां, "मैं हृदय मन्दिर से लिख रहा हूँ", तथा लेख-चयन आदि सब कुछ इतने हृदयग्राही तथा Direct Heart को अपील करने वाले होते हैं कि उनको पढ़ते समय पाठक मंत्रमुग्ध सा हो जाता है।

आपके प्रयत्न से "दयानन्द-संस्थान" ने इतने अल्प काल में जो वैदिक साहित्य आर्य जनों के लिये प्रस्तुत किया है वह जितना बहुमुखी एवं सर्वांगीण है उतना साहित्य कोई बड़ी सभा भी इतने कम समय में जनता को नहीं दे सकी। वास्तव में आप "भारतेन्द्र नाथ" ही नहीं, "आर्येन्द्रनाथ" भी हैं :—

हैं धन्य आप भारतेन्द्र नाथ,
वैदिक साहित्योन्नयन-नाथ।
है "दयानन्द-संस्थान" धन्य।
सब आर्य जगत् आपके साथ।।

डा० सूर्यदेव शर्मा एम० ए० डी० लिट्
अजमेर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बंधुवर,

सादर नमस्ते !

जीवन के वात्याचक्र में नैराश्य-थपेड़े से भयाक्रांत बने मेरे मानसिक परिवेश को 'जनज्ञान' के अंक युगल (जुलाई-अगस्त) द्वारा पर्याप्त बल एवं संबल मिला। (१) क्या वेदों में मांस-भक्षण का विधान है ? और (२) वेद और बाईबिल—निबंध युग्म के स्थायित्व तथा वेद-गंगा और अथर्व वेद का भूमि सूक्त सदृश लेख-द्वय के गौरव ने बुभुक्षित 'मनस्' को तुष्टि एवं पुष्टि प्रदान की।

मैं बधाई देता हूँ आपके असीम साहस को, अटूट धैर्य को, ऊर्जस्वित लगन को और पवित्र प्रयास को। गद्दी और गुरुडम में खोये आर्य सामाजिक नेतृत्व को झकझोर कर, आर्यजनों की आंतरिक आह और कराह स्वयंमेव झेल कर वेद-वैदिक साहित्य के सुन्दर प्रकाशन की साव संजोकर आपने वस्तुतः महर्षि के संदेश की सुष्ठु व्यापकता प्रदान करने का जो सत्प्रयास किया है, वह भारत के भावी सांस्कृतिक इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों में अंकित होगा। साथ ही भौतिक मलापगा में स्नात विभ्रान्त भ्रष्टाचारी युग-जीवन को सही दृष्टि भी मिलेगी। प्रभु आपको बल दें।

वेद-पथ भव्य शिव पावन वरेन्यता से।
रूढ़िवाद नष्ट करे होकर प्रकाशवान।
आर्य परिवेश में स्वदेश शक्तिशाली बने,
'विश्व एक नाद बने' महाघोष हो प्रधान
कलह-मलापगा का पंक शेष रहे नहीं,
ऐक्य साम्य पूरित सुनायी पड़े साम-गान
ऐसी हो सुबुद्धि सभी धर्म अनुयायियों की
भारतेन्द्र ! सुकृत तुम्हारा आर्य यश-गान

आपने जो अनशन की पद्धति ग्रहण की है, वह प्रभावपूर्ण होने पर भी मेरी दृष्टि में अनुचित है। आप सदृश संगठन कर्ता व्यक्ति का जीवन खतरे में होना राष्ट्रीय क्षति और सर्वनाश का सूचक होगा।

जितनी शीघ्र हो, इसे छोड़ दीजिए।

नबीपुर —भैरवदत्त शुक्ल

—

परम आदरणीया बहन !

पवित्र सूत्र "राखी" को भेजकर आपने अपने छोटे भाई को जो स्नेह प्रदान किया है उस स्नेह को शब्दों के भाव द्वारा सीमा बद्ध नहीं कर पा रहा हूँ। मेरी बहन प्रभु आपको इतना आत्म बल दे कि यह महान् पावन कार्य (वेद का प्रचार व प्रसार भूमण्डल के प्रत्येक परि-वार तक होता रहे बढ़ता व फैलता रहे) सफलतापूर्वक होता रहे। वैसे तो वेद भाष्य के प्रथम जिल्द के विमोचन समा-रोह के समय अध्यक्ष महोदय द्वारा लिये गये व्रत के अवसर पर मैं एक वर्षीय संकल्प (व्रत) लिया हूँ कि मैं वेद भाष्य प्रकाशन यज्ञ में ५ रु० प्रतिमास पहली तारीख को नियमित रूप से एक वर्ष तक भेजता रहूँगा जिसकी तीसरी आहुति भेज चुका हूँ। मेरा यह व्रत जून १९७३ से प्रारम्भ है।

पावन सूत्र "राखी" की गरिमा व मर्यादा को एवं आपके द्वारा छोटे भाई को प्रदत्त स्नेह को प्राप्त कर मैं अपनी बहन की सेवा में वेद भाष्य प्रकाशन हेतु २५) पच्चीस रुपये की आहुति—दो रुपये प्रतिमास के हिसाब से एक वर्ष तक भेजते रहने का व्रत लेता हूँ। यह आहुति प्रति मास की पहली तारीख को नियमित रूप से अगस्त १९७३ से एक वर्ष तक भेजता रहूँगा। आशा है मेरी बहन अपने छोटे भाई के अञ्ज-लिबद्ध इस उपहार को अवश्य स्वीकार करेंगी और अपने छोटे भाई के विचारों की प्रेरक शक्ति होंगी।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेद भाष्य प्रकाशन यज्ञ का जो महान् बोझ आपने उठाया है-उसके लिये जन-ज्ञान परिवार के समस्त भाई बहनों से हमारा निवेदन है कि बहन के इस महान कार्य की सफलता के लिये प्रत्येक भाई-बहन अवश्य सहयोग दें। सहयोग कर्त्ताओं की नामावलि में प्रत्येक भाई बहन अपना नाम अवश्य अंकित करावें। और वेद के प्रति अपनी श्रद्धा का परिचय दें। पावन "राखी" की गरिमा व महिमा को ध्यान में लाते हुये बहन के इस आर्थिक सहयोग के निवेदन को अवश्य स्वीकार करें-आशा में आपका भाई। मेरी बहन मेरे इस निवेदन पर समस्त भाई बहन अवश्य ध्यान देंगे।

श्रद्धानत आपका छोटा भाई
शशिभूषण 'श्रेष्ठ'
शीतल माझा (देवरिया)

—

आदरणीय बहिन,

आपका भेजा पवित्र सुनहरा मनमोहक रक्षा बन्धन सूत्र मिला। मेरा सहयोग सदा ही आपके साथ रहेगा। इससे पहिले भी मेरी पुत्री कुमारी मंजु आपको २५ रुपये और मैं ११ रुपये आपको भेज चुका हूँ। अब फिर श्रद्धा के फूल २५ रुपये मेरे द्वारा स्टेट बैंक चैक न० ए. 76/66 और मेरे एक सहयोगी श्री जसवन्त सिंह जी बग्गा भिगनेलर जी द्वारा ११ रुपये का चैक न० ए आर 8539 कुल ३६) रुपये आपको भेज रहा हूँ। ५ रुपये अलग मनीआर्डर द्वारा श्री रक्षा रानी की ओर से आपको भेजे जा रहे हैं। बहिन वह आर्य सज्जन कहां हैं जो अपना तन-मन धन वेद पर निसार करने का नित प्रण करते हैं। मन और तन तो निछावर करना एक कठिन काम है। पर धन तो आसानी से दिया जा सकता है। यदि ऋषि की आज्ञा माननी है तो हम को अपनी आय का दशांश अवश्य दान करना चाहिये। आपका संकल्प पवित्र है। प्रभु अवश्य साथ देंगें। और दानी भाईयों को जागृत करेंगे ताकि आपका कार्य नित-प्रति-दिन उन्नति करे। हर स्थान पर वेद का नाद सुनाई दे।

मैं फिर आप को यकीन दिलाता हूँ कि मैं अपना सहयोग पूर्ण रूप से आपको देता रहूँगा। और आर्य भाईयों को भी मिलता हूँ। और आपकी पुकार उनको सुनाता हूँ। आशा है कभी न कभी वह पुकार सुनेंगे। और आलस्य की गहरी नींद से जागेंगे। प्रभु से कार्य-पूर्ति के लिये प्रार्थना के साथ आपका भाई।

महाराज कृष्ण
शिमला ४,

—

घर-घर सत्याथ प्रकाश पहुंचाओ !

आदरणीय भारतेन्द्रनाथ जी,

सादर नमस्ते।

हम यहां जोधपुर में सत्यार्थ प्रकाश व ऋषि दयानन्द जी का जीवन चरित्र घर-घर पहुँचाने का प्रयास कर रहे हैं इसमें हमें पर्याप्त सफलता भी मिल रही है इसका श्रेय अगर आपको भी दिया जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। आपने इतना सस्ता साहित्य निकाला। हमें सत्यार्थ प्रकाश प्रचार पोस्टर भेजे, प्रचार के छोटे पत्र भेजे, हमारे इस कार्य को जनज्ञान व वीर अर्जुन द्वारा सम्पूर्ण भारत में प्रचारित कर हमें उत्साहित किया। इसके लिए हम आपको हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

सत्यार्थ प्रकाश व ऋषि जीवनी किस प्रकार सम्पूर्ण भारत के घर-घर में पहुँचे इसके बारे में मैं अपने विचार प्रस्तुत करना चाहूँगा कृपया इसे जनज्ञान में प्रकाशित करने का कष्ट करें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भारत के घर घर में सत्यार्थ प्रकाश व महर्षि दयानन्द जी का जीवन चरित्र कैसे पहुँचे ?

(आर्य समाज स्थापना शताब्दी तक हम सत्यार्थ प्रकाश व महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र घर घर पहुँचा सकते हैं)

जनज्ञान प्रकाशन से सजिल्द सत्यार्थ प्रकाश २)५० में घर पर पड़ता है अब हमें इसे २ रुपये में ही जनता को बेचना है तो ऐसा कीजिये अपने नगर के दानी महानुभावों से मिलिये और कहिये कि अगर आप ५० रुपये दान देंगे तो १०० सत्यार्थ प्रकाश पर आपके दान की सील लगा देंगे। अगर १०० रुपये दान देंगे तो २०० पर आपके दान का नाम अंकित हो जायेगा। इस प्रकार दान प्राप्त किया जा सकता हैं व सत्यार्थ प्रकाश (सजिल्द) केवल दो रुपये में दिया जा सकता है। रही महर्षि दयानन्द जी के जीवन चरित्र की बात तो यह तो १ रुपये में ही घर पर पड़ता है वैसे मूल्य १)५० है। १ रुपये में सचित्र बढ़िया जीवन चरित्र प्रत्येक व्यक्ति ले सकता है।

अब समस्या है बेचने की, तो ऐसा कीजिये अपने नगर की समस्त आर्य समाजों के सक्रिय कार्यकर्त्ता सम्मिलित होइये और सब मिलकर समय निश्चित कीजिये कि किस समय हमें सत्यार्थ प्रकाश का हाथ ठेला लेकर निकलना है ठेले पर ओ३म् ध्वज होना चाहिये तथा बाजारों के चौराहों पर खड़े होकर घोषणा करनी चाहिए। मेरे विचार से सप्ताह में एक बार ही अगर हम सिर्फ २ घन्टे के लिए निकल जायें तो भी बहुत अच्छा रहेगा। रविवार के दिन सायंकाल ४ से ६ बजे तक सत्यार्थ प्रकाश व ऋषि जीवन का प्रकाश फैलाने निकल जायें तो मुझे विश्वास है कि इन २ घन्टे में १०० सत्यार्थ प्रकाश व १०० जीवन चरित्र निकाल सकते हैं। क्योंकि सिर्फ २ रुपये में सजिल्द सत्यार्थ प्र[काश] व १ रुपये में सचित्र जीवन चरित्र प्रत्ये[क] व्यक्ति खरीद लेगा।

आवश्यकता है हाथ ठेला ले[कर] बाहर निकलने की। तो मुझे विश्वास [है] कि एक सप्ताह में २ घन्टे का समय [को]भी ऋषि-भक्त दे सकता है और [अ]इस प्रकार सब मिलकर प्रचार करें [तो] अवश्य ही आर्य समाज स्थापना शता[ब्दी] तक हम सत्यार्थ प्रकाश व स्वामी द[या]नन्द जी का जीवन चरित्र घर-[घर] पहुँचा सकते हैं। हम जोधपुर में ऐ[सा] ही कर रहे हैं तथा इससे हमें असाधा[रण] सफलता मिल रही हैं। हमने दो माह [में] ३००० सत्यार्थ प्रकाश व २००० ऋ[षि] जीवन चरित्र बेच दिये हैं तथा [का]निरन्तर जारी है।

अगर सम्पन्न आर्यसमाज हो [तो] इसके साथ ही हमेशा के लिये हाथ ठे[ला] बनवा कर उसमें लाउड स्पीकर लगा[कर] बोलने वाले व्यक्ति को वेतन दे[कर] रख लिया जाय तथा वह दिन [भर] बाजारों में माइक से प्रचार द्वारा सत्[यार्थ] प्रकाश व ऋषि जीवनी का प्र[चार] फैलाये तो भी बहुत उचित रहेगा [।] इस प्रकार घर-घर ऋषि संदेश पहुँ[चा] कर हम वास्तव में आर्यसमाज स्था[पना] शताब्दी मना सकते हैं।

एक आर्य यु[वक]

चेतनाप्रकाश

उम्मेद चौक, जोधपुर

जोधपुर में सत्यार्थ प्रका[श] अभियान के यज्ञ में, आहु[ति] देने वाले सज्जनों के नाम

१. श्री कुंवरपालजी आर्य ५०

सर्वाधिक [...]

३. चन्द्रप्रकाश देवड़ा १०

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

४ जयदेव जी अवस्थी १००)
५. दीपचन्द जी भूत १२०)
६. रामस्वरुप जी राक ६०)
७. रामदयालजी (लाडजी) ८६)
८. आर्यसमाज रातानाडा ७०)
९. रामचन्द्रजी शर्मा ५१)
१०. श्री रमेशचन्द्र जी भाटिया ५०)
११. श्री सवाई सिंह जी भाटी चैनपुरा ६०)
१२. श्री पन्नेसिंह जी चैनपुरा ६०)
१३. श्री नेमीचन्द जी चैनपुरा ३५)
१४. श्री केशर्वासिह जी सांखला ३५)
१५. श्री कुन्दन सिंह जी गहलोत ३०)
१६. श्री अनन्तराम जी ३०)
१७. श्री भींवसिंह जी ५०)
१८. श्री राणीदान जी डागा २५)
१९. श्री लादूराम जी १०)
२०. श्री चांदमल जी कंसारा १०)
२१. श्री बसन्तलाल जी १०)
२२. श्री शास्त्री इन्जिनिरिंग एण्ड ट्रोली वर्क्स ११)
२३. श्री महेन्द्रनाथ जी अरोड़ा ६)
२४. श्री मोहनलाल जी उपाध्याय ६)
२५. श्रीमती प्रोफेसर कैलाश नारायण जी मेहरा ५)

इन्हीं के दान से घर-घर सत्यार्थ प्रकाश पहुँचाने का अभियान चलाया जा रहा है। अतः सभी का धन्यवाद।

आर्यसमाज जोधपुर रामसिंह

—

अभिनन्दन पत्र : जो दयानन्द संस्थान के अध्यक्ष को इसमायला में भेंट दिया

श्रीमान् सभापति तथा अन्य अतिथिगण।

आपने अपना बहुमूल्य समय हमारे उपकारार्थ लगाया है। उस के लिए हम आपके आभारी हैं। और आप लोगों को मार्गादि का जो कष्ट हुआ है उसके लिए क्षमा चाहते हैं। और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं। कि हमें जन्म-जन्मान्तर आपकी सेवा का अवसर प्रदान करें।

श्रीमान् जी,

आप ने जो जनता के उद्धार तथा ऋषि जी के मार्ग का अनुसरण करते हुए नास्तिकों के फंदे से निकालने हेतु जो चारों वेदों का भाष्य आरम्भ किया है वह चिरस्मरणीय रहेगा। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह इस कठिन कार्य की सफलता के लिए आप में साहस तथा बल दें तथा जनता से अपील है कि इस महान यज्ञ में अपनी आहुति अवश्य दें।

अभिनन्दन पत्र

श्रीमान् जी,

ग्रामों में आर्य समाज का नाम मिटता जा रहा है। और नास्तिकता बढ़ती जा रही है। इस दशा में हमारा शताब्दी मनाने का कोई अधिकार नहीं बनता। अतः शताब्दी मनाने हेतु हमारी कुछ अभिलाषाएँ पूर्ण हों :—

१—प्रत्येक गांव में आर्यसमाज मन्दिर तथा वैदिक पुस्तकालय हो।

२—प्रत्येक घर पर ओ३म् पताका हो।

३—प्रत्येक व्यक्ति सन्ध्या तथा अग्निहोत्र करें।

४—प्रत्येक घर में चारों वेद, सत्यार्थ-प्रकाश तथा ऋषि जीवनी हो।

५—प्रत्येक गांव में सत्संग हों।

६—पाठशालाओं में चरित्र पर बल दिया जावे।

७—"जनज्ञान" पत्रिका के अधिक से अधिक ग्राहक बनें।

८—शराब का पूर्ण रूप से बहिष्कार हो।

९—दहेज प्रथा समाप्त हो।

१०—आकाश वाणी से अश्लील गाने बन्द करावें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

श्रीमान् जी,

आप से निवेदन है कि हमारी असमर्थता को दृष्टि में रखते हुए कोई ऐसा यत्न करें कि हमारी इच्छा पूर्ण हों और ग्रामों में भी शताब्दी मनाई जावे।

अन्त में आप का हार्दिक स्वागत करते हुए १००० नित्य कर्म विधि की पुस्तकें बिना मूल्य योग्य-व्यक्तियों में बांटने के लिए देकर प्रार्थना करता हूँ कि आप अपने अमृतोपदेश का पान कराके शान्ति प्रदान करें और त्रुटि क्षमा करें।

आपका सेवक

बलबीर सिंह आर्य

इसमायला (रोहतक)

—

"मैं करूँगा स्वीकार तुम्हारे राखी के ये तार"

प्यारी धर्मप्रेमी बहन, !

सप्रेम नमस्ते ! रक्षा बन्धन, बहनों की मान-ज्ञान-आन की रक्षा का पवित्र संकल्प ! लेकिन आज के आर्यावर्त्त देश की राजधानी इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) में जहाँ नारी को जीना दूभर हो गया है, वृत्त-पत्रों में इन समाचारों के व्यत्री धारी विवरण को मैं जब देखता हूँ तब शरीर में अग्नि सी दौड़ती है। अज्ञान, असत्य, अनाचार और व्यभिचारी यत्र तत्र सर्वत्र देखने, सुनने को आता है। वहनजी, प्यारे ऋषि को हम आर्य भूल चुके हैं। उस महान विभूति का दिया हुआ सन्देश हम भूल रहे हैं। उनका वचन अपने उल्टे-सीधे कार्य में विठा के जनता में अपने पवित्र धर्म-संस्था को हम बदनाम कर रहे हैं। आर्य नेताओं में आर्यसमाज के मन्त्री प्रधानों के सत्ता की खींचातानी में हम यह 'आर्य समाज द्वेषी' महर्षि दयानन्द के ही नहीं अपितु सनातन वैदिक धर्म पर उस वृक्ष की ही लकड़ी रूपी कुल्हाड़ी बन के हथियार चला रहे हैं। आज आर्यों को पहले प्रथम शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करने की जरूरत है। तभी हम राजनीतिक क्षेत्र में कार्य कर सकते हैं। लेकिन उससे भी कृण्वन्तो **विश्वमार्यम्**' की पूर्ति के लिए हमको संकुचित नहीं बनना चाहिए।

बहन, मुझे देश धर्म के प्रति प्रेम बढ़ाने का और संसार को मातृ दृष्टि से, भगिनी दृष्टि से देखने का आर्यसमाज की संस्था ने ही सिखाया है। मुझ **अभागे को सदा 'राखी'** भेजकर कृतार्थ करें। मैं धन से गरीब अवश्य हूँ। लेकिन मैं आंतरिक दृष्टि से स्वयं को गरीब महसूस नहीं करता।

—ओमप्रकाश गंगाराम आर्य

—

प्रिय बहन !

आपका राखीसूत्र मिला। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि वेद भाष्य में हर प्रकार से सहायता करूँगा।

मैं शीघ्र ही १ सेट के पैसे और भेज रहा हूँ।

आप जो काम कर रहे हैं जनज्ञान से ज्ञात होता ही रहता है परन्तु दक्षिण भारत की हिन्दू जनता को हमेशा ही अनाथ रखा गया है। क्या ही अच्छा होता जो कोई भ्राता भारतेन्द्र नाथ जैसा उत्साही और सच्ची लगन वाला दयानन्द का सेवक मैसूर जैसे शहर में जम जाता तो डूबा हुआ सूर्य उदय हो जाता।

प्रभु से प्रार्थना है कि आर्य महापुरुषों के हृदय में जागृति हो और इस देश के इस अभागे अंग को याद करें और कुरबानी देने का साहस करें।

भवदीय

मैसूर **—रामसरन आहूजा**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मान्यवर महोदय,

सादर नमस्ते ।

आपने सरिता के अन्तर्गत प्रलाप का मुंह तोड़ उत्तर "क्या वेदों में मांस भक्षण का विधान है ?" पुस्तक छापकर दिया सो एक सराहनीय कार्य है परन्तु मेरा कहना है कि आपका उत्तर सरिता तो छापेगी नहीं तो आपका उत्तर सरिता के पाठकों तक कैसे पहुँचेगा ? उनको कैसे पता चलेगा कि आपने कोई उत्तर दिया है ? सरिता की नीति यही है कि आर्य धर्म के महापुरुषों की छीछालेदर करना। आपके उत्तर से उसका मुंह बन्द नहीं होगा और जो कार्य चल रहा है उसमें कोई कमी नहीं आने वाली है ।

आवश्यकता इस बात की है कि सरिता के प्रकाशकों को न्यायालय में चुनौती दी जाय और न्यायालय की कार्यवाही पत्रों में प्रकाशित की जाय उनको पता है हिन्दुओं या आर्यों की तरफ से उसके विरुद्ध कुछ भी होने वाली नहीं है इसी से उसकी हिम्मत होती है अन्यथा मुसलमानों के संबंध में कुछ लिखकर देखें एक दिन में आटे दाल का भाव मालूम हो जाये । मुझे पता चला है कि ईसाइयों ने पं श्रीराम आचार्य पर न्यायालय में मुकदमा चला रखा है पर ईसाइयों का तो आधार ही गलत है पर फिर भी उन्होंने न्यायालय में चुनौती दी है । हमारा आधार तो बिल्कुल ठोस है । चुनौती देने में डरने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

आशा है आप मेरे सुझाव पर विचार करेंगे और और विद्वानों से भी राय लेंगे और उचित कार्यवाही करेंगे । धन्यवाद ।

भवदीय
प्रहलादपचेरिया
बम्बई
आर्यसमाज माटुंगा

—

सम्पादक जी,

जनज्ञान मासिक का अगस्त ७३ अंक मिला । 'महर्षि दयानन्द ने कहा था' पर लिखा लेख काफी महत्वपूर्ण लगा । 'बयालीस के ज्वार की उन लहरों में' (लेखक : कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर) तथा 'साहबों की पिटाई' (लेखक : रामप्रसाद बिस्मिल) पर सच्ची घटनाओं को पाठकों के सामने रखने के लिए धन्यवाद । आशा है आगे भविष्य में भी इसी प्रकार से अन्य घटनाओं आदि से हम पाठकों को परिचित कराते रहेंगे ।

आनन्द प्रकाश भारद्वाज
पूरनपुर

बहुमत का गीदड़

डालर के पहिये
ईसाइयत का छकड़ा
आ रहा अमरीकी
पादरी अकड़ा ।
दवा के नाम पर
पिलाता गद्दारी,
भूखों के पेटों में
भरता मक्कारी ।
कहता है, करता हूँ
दुखियों की सेवा,
तेरे यहां हब्शी
क्या खा रहे मेवा ?
चीन का गुरिल्ला
पाक की तोप
अंग्रेजी बारूद
भर रहा पोप ।
भारत की छाती
पिशाच रहे फाड़,
टूट रही सीमा
धधकते पहाड़ ।
सेकुलरी नींद में
नेता हैं लीचड़,
निज को ही चीथ रहा
बहुमत का गीदड़ ।
कब तक न टूटेगा
सातवां दुआर ?
अनुभवी रे अभिमन्यु
मार—मार—मार ।

—डा० रामनाथ त्रिपाटी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पितरों का श्राद्ध और तर्पण

साहित्याचार्य श्री वीरेन्द्र शास्त्री, एम० ए० काव्यतीर्थ

पितृयज्ञ

महर्षि मनु ने मनुस्मृति में पांच महायज्ञ नित्य करने के लिये बताये है—ब्रह्मयज्ञ (सन्ध्या-स्वाध्याय), देवयज्ञ (हवन), पितृयज्ञ, भूतयज्ञ (बलिवैश्वदेव) और अतिथि यज्ञ । इनमें से तीसरे पितृयज्ञ का अर्थ, "माता पिता आदि वृद्व ज्ञानी और परम योगियों की सेवा करना" है। इसी पितृयज्ञ के दो भेद अथवा स्वरूप श्राद्ध और तर्पण नाम से कहे जाते हैं।

श्राद्ध

जिस काम में 'श्रत्' (सत्य) धारण किया जाय वह (श्रत्+वा)='श्रद्धा' कहाता है, और जो काम श्रद्धा से (अर्थात् सत्य को धारण करके) किया जावे उसे 'श्राद्ध' कहते हैं। इस प्रकार पितरों की श्रद्धा से सेवा करना ही 'पितृश्राद्ध' अथवा 'श्राद्ध' जानना चाहिये। यह श्रद्धापूर्वक सेवा प्रत्यक्ष जीवित मनुष्यों की ही हो सकती है तथा वास्तव में की भी जाती है। अतः हमें जीवित पितरों की सेवा सुश्रूषा के लिये ही 'श्राद्ध' शब्द का प्रयोग प्रचलित करना चाहिये।

तर्पण

'तर्पण भी' पितृयज्ञ का रूप है। इसका प्रयोग भी जीवितों के लिये ही किया जा सकता है। इस शब्द का व्यवहार भी जीवित जनों के लिये करके सच्चे वैदिक श्राद्ध की भावना तथा परम्परा को उज्जीवित किया जाना चाहिये।

'तर्पण' शब्द का अर्थ है—जिस काम से माता पिता आदि पितर तृप्त, प्रसन्न हों, जिस काम से पितरों को तृप्त, प्रसन्न किया जाय। जिन मृतक पूर्वजों के वर्तमान जन्म का स्थान आदि पता नहीं उनको कैसे तृप्त किया जा सकता है? इस प्रकार यह तर्पण भी मरे हुओं के निमित्त तो किया ही नहीं जा सकता। क्योंकि इस तर्पण में तो "अत्यन्त श्रद्धा से उत्तम अन्न, वस्त्र, सुन्दर सवारियां आदि देकर अच्छे प्रकार से तृप्त करना है अर्थात् जिस-जिस काम से उनकी आत्मा तृप्त और शरीर स्वस्थ रहे उस-उस काम से प्रीतिपूर्वक उनकी सेवा करना है"। यह व्यवहार जीवितों के साथ ही किया जा सकता है।

देवों का तर्पण

तर्पण (तृप्त करने) के साथ सत्कार देवों, ऋषियों और पितरों का करना बताया गया है। 'विद्वांसो हि देवाः' यह शतपथ ब्राह्मण पुस्तक का वचन तो अब सभी जान और मान गये हैं। चारों वेदों के पढ़ने से 'ब्रह्मा' की उपाधि पाये देवता

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विद्वानों की तथा उनसे कम विद्वान जनों की और उनके परिवार—पत्नी, पुत्र, शिष्य, सेवक आदि की भी सेवा करना 'देव तर्पण' है।

ऋषियों का तर्पण

ब्रह्मा और उनके पुत्र, पौत्र (मरीचि) से लेकर जैमिनि ऋषि पर्यन्त मन्त्र द्रष्टाओं के सामने जो व्यक्ति देश, धर्म, जाति की उन्नति के लिये अच्छी मन्त्रणा (सलाह) देने वाले तथा दूरदर्शी विद्वान् और वेद व्याख्याता, विद्या पढ़ाने वाले अध्यापक जन हैं उनका तथा उनकी पत्नी, पुत्र, शिष्य आदि का तृप्ति के साथ सत्कार करना 'ऋषि तर्पण' है।

पितरों का तर्पण

पितरों तथा उनसे सम्बन्धित जनों का तृप्त करना "पितृ तर्पण' है। इसका बहुत अधिक विस्तार है, क्योंकि पितर अनेक प्रकार के हैं।

पितृगण (पितर)

निम्नलिखित प्रकार के पितृगण (पितर) माने गये हैं—

१—**सोमसद्**—परमात्मा के भक्त तथा पदार्थ विद्या (साइन्स) में निपुण।

२—**अग्निष्वात्त**—अग्नि (विद्युत् आदि) को जानने वाले विद्वान् (वैज्ञानिक)।

३—**बर्हिषद**—उत्तम विद्यावृद्धियुक्त व्यवहार चलाने वाले।

४—**सोमपा**—ऐश्वर्य के रक्षक, औषधि द्वारा रोगनाशक वैद्य आदि।

५—**हविर्भुक्**—सेवन करने योग्य वस्तुओं के प्रचारक तथा मादक अभक्ष्य वस्तुओं के निषेधक।

६—**आज्यपा**—जानने और प्राप्त करने योग्य (घृत दुग्ध आदि) वस्तुओं के रक्षक तथा प्रचारक।

७—**सुकाली**—जिनका समय अच्छी प्रकार धर्म-कार्य करने में व्यतीत होता हो।

८—**यम**—दुष्टों को दण्ड देने वाले, श्रेष्ठों के पालक न्याया-धीश :

९—पिता, पितामह, ··· बाप, दादा, परदादा।

माता, पितामही, प्रपितामही·····मां, दादी, परदादी।

पत्नी, सम्बन्धी, सगोत्र···अपनी स्त्री, बहिन आदि रिश्तेदार तथा गोत्र के कुटुम्बी।

आश्विन (क्वार) के महीने का पहला (कृष्ण) पक्ष 'पितृपक्ष' कहाता है। इस पक्ष में पितरों के उद्देश्य से श्राद्ध और तर्पण धूमधाम से करने की परम्परा चली आ रही है। पक्ष के अन्त में 'पितृविसर्जनी' अमावस्या आती है जिस दिन पितरों का विसर्जन किया जाता है। इससे स्पष्ट है कि ये विसर्जित किये जाने वाले पितर वानप्रस्थी तथा सन्यासी होते थे जो इस तिथि से कुछ महीने पहले से (सम्भवतः वर्षा ऋतु के आरम्भ से) ही निमन्त्रित किये हुये होकर अपना भ्रमण कार्य छोड़कर वनों तथा नगर के प्रान्त भागों (उपवनों) में स्थित आश्रमों से नगर और ग्रामों में आकर निवास किया करते थे। इस पक्ष में, वर्षा ऋतु के समाप्त होने के अवसर पर, वे पितर फिर अपने अपने काम के लिये भ्रमण करने को प्रस्तुत होते हैं अतः उनका श्राद्ध और तर्पण करके उनको आदर सहित विसर्जित किया जाता है। इसी लिये इस पक्ष का नाम 'पितृपक्ष' पड़ गया।

इस प्रकार जो निमन्त्रण और विसर्जन तथा श्राद्ध और तर्पण जीवित पितरों का हो सकता है वह पौराणिक काल में, वास्तव में, जीवितों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का किये जाने पर भी, मृतकों के उद्देश्य से किया जाने लगा। यहीं से भूल आरम्भ हुई। एक असत्य भावना से जनता ग्रस्त होने लगी। पौराणिक पण्डितों ने भी इसी भावना को प्रचारित किया कि इस प्रकार किया गया श्राद्ध और तर्पण करने वाले मनुष्य के पिता, दादे, परदादे आदि को प्राप्त होगा। सम्भव है कि पितृयज्ञ (जीवित पितरों की सेवा सुश्रूषा) के करने में उदासीन हो जाने वाले मनुष्यों को यह कहकर उसमें प्रेरित किया गया हो कि इससे उन्हीं के मृत पितर तृप्त होंगे और इस प्रकार विनष्ट होते हुये पितृयज्ञ की परम्परा को किसी प्रकार जीवित रखा गया हो। किन्तु यह मृतक श्राद्ध की भावना और कार्य पूरी तरह से वेद शास्त्रों के और तर्क के भी विरुद्ध है–इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

धर्म के नाम पर अधर्म (मृतकों के निमित्त श्राद्ध) होते देखकर नास्तिक चार्वाकों को यह कहने का ठीक ही अवसर मिला कि—

मृतानामिह जन्तूनां श्राद्धं चेत् तृप्तिकारणम्।
गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पाथेय कल्पपम्॥

अर्थात् "यदि श्राद्ध मरे हुये प्राणियों की तृप्ति का कारण है तो यात्रा में गये हुये प्राणियों का साथ में भोजन आदि लेकर जाना व्यर्थ है!" जब कहीं हम उसी पर ही विदेश गये व्यक्ति के नाम पर किसी अन्य व्यक्ति को श्रद्धापूर्वक खिलाया हुआ भोजन उस के पास नहीं पहुँचता तो जिस व्यक्ति के मरने के पश्चात् पुनर्जन्म के स्थान तथा योनि का कुछ भी पता नहीं ऐसे मृत प्राणी के पास भोजन आदि पहुँच जाना तो सर्वथा असम्भव है। आज भी यह तर्क उतना ही प्रबल है और भविष्य में भी रहेगा। फिर तो मृतकों के उद्देश्य से किया गया श्राद्ध अन्ध परम्परा ही सिद्ध हुई। अतः मृतक श्राद्ध सर्वथा त्यागने योग्य है।

आजकल मृतक श्राद्ध तीन पीढ़ियों (पितर, दादा, परदादा) तक का ही पौराणिक लोग किया करते हैं, ऐसा क्यों? चौथी पीढ़ी परदादा के पिता का क्यों नहीं किया जाता? इस बात से भी यही सिद्ध होता है कि श्राद्ध जीवितों का ही किया जाना ठीक है क्योंकि तीन पीढ़ियों तक के पितर ही हमें जीवित अवस्था में मिल सकते हैं।

पितरों के विषय में वेद मन्त्र

यजुर्वेद के दूसरे तथा १९ वें अध्याय में अनेक मन्त्र पितरों का वर्णन करने वाले हैं। ये सब जीवित पितरों के संबंध में ही हैं, फिर भी मृतक श्राद्ध के पक्षपाती इनसे अपना पक्ष सिद्ध करने की असफल चेष्टा किया करते हैं। पाठकों की सेवा में यजुर्वेद के दूसरे अध्याय के ३१—३४=४ मन्त्र प्रस्तुत किये जाते हैं—

अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वम्।
अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषत॥
(यजु० २।३१)

अर्थात् हे पितरो, विद्या द्वारा पालन करने वाले लोग, आप (अत्र) यहां इस स्थान में, इस सभा में, इस पाठशाला में (मादयध्वम्) हमें विद्या विज्ञान देकर आनन्दित कीजिये। (यथाभागम्) अपने अपने भाग (विद्या अध्यापन सम्बन्धी कार्य तथा भोजन इत्यादि पत्र) को। (आवृषायध्वम्) विद्वान् के समान स्वीकार कर आनन्दित होइये। (पितरो अमीमदन्त) हे पालन करने वाले जनो, आप इस सत्य के उपदेश, विद्यादान आदि काम में हर्ष से सदा उत्साह युक्त होइये तथा (यथा-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भागम्) यथायोग्य संस्कार को प्राप्त कर श्रेष्ठ उदाहरण से (आवृषायिषत) प्रसन्न होते हुये जीवन व्यतीत कीजिये।

नमो वः पितरो रसाय,
नमो वः पितरः शोषाय,
नमो वः पितरो जीवाय,
नमो वः पितरः स्वधायै।
नमो वः पितरो घोराय,
नमो वः पितरो मन्यवे,
नमो वः पितरः, पितरो
नमो वः।
गृहान् नः पितरो दत्त,
सतो वः पितरो देष्मै,
तद्वः पितरो वास आधन्त ॥

(यजु० २।३२)

हे पितर लोगो, हम लोग (वः) आप को (रसाय) विज्ञान रूपी आनन्द, रसादिक औषधि और जल की विद्या का तथा वसन्त ऋतु के व्यवहार का ज्ञान प्राप्त करने के लिये (नमः) नमस्कार करते हैं। हे पितरो, (शोषाय) औषधि और जल को सुखाने वाली अग्नि और वायु की विद्या तथा ग्रीष्म ऋतु का बोध होने के लिये, (जीवाय) जीविका, जीवन और पूर्ण आयु तथा वर्षा ऋतु का ज्ञान प्राप्त करने के लिये, (स्वधायै) अन्न पृथिवी, राज्य, न्याय का प्रकाश तथा मोक्ष विद्या की प्राप्ति और शरद् ऋतु के ज्ञान के लिए. (घोराय) घोर विपत्ति में निर्वाह की विद्या जानने और दुःख दूर करने तथा हेमन्त ऋतु के ज्ञान के लिये, और (मन्यवे) दुष्टों तथा दुष्टकर्मों पर क्रोध करने तथा वैसा व्यवहार सीखने के लिये और शिशिर ऋतु का ज्ञान प्राप्त करने के लिये आपको बारम्बार नमस्कार हो। हे पितरो (गृहान् नः दत्तः) आप हमारे घरों में नित्य आकर गृहाश्रम की उपयोगी विद्याओं (डोमेस्टिक साइंस) को प्रदान कीजिये। हे पितरो (सतो नः देष्म) हम अपने अधिकार में विद्यमान पदार्थों को आपके लिये देते हैं तथा सदा देवें। हे पितरो, (तद्वः वास) यह आप के लिये वस्त्र है। इनको स्वीकार करें संसार में विद्या का उपदेश कीजिये।

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं
पुष्करस्रजम्।
यथेह पुरुषो ऽसत् ॥

(यजु० २।३३)

हे विद्यादान करने वाले पितरो, आप गर्भ के समान सुवक्षित, (पुष्करस्रज) फूलमाला को धारण करने वाले के समान सुशोभित और विद्याग्रहणार्थ पोषक बल धारण किये हुये इस कुमार ब्रह्मचारी को (आधत्त) अच्छे प्रकार स्वीकार कीजिये (यथा इह) जिससे यह इस संसार तथा हमारे कुल में (पुरुषः असत्) विद्वान् और पुरुषार्थी हो जावे।

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं
पयः कीलालं परिस्रुतम्।
स्वधास्थ तर्पयत मे पितॄन् ॥

(यजु० २।३४)

ईश्वर का आदेश है कि गृहस्थ मनुष्य पुत्रादिकों को आज्ञा दें कि तुम सब (ऊर्जंवहन्तीः अमृतं) बलकारी, सुखदायक, स्वादिष्ट पेय (जल आदि) और रोगनाशक औषधि तथा मिठाइयां, (पयः घृतं कीलालं) दूध, घी और उत्तम रीति से पकाया हुआ अन्न, पकवान आदि (परिस्रुतम्) रस से भरे डाल के पके फल और शहद आदि देकर (मे पितन् तर्पयत) मेरे पितरों को तृप्त करो, और (स्वधास्थ) अपने धन, विद्या, भक्ति आदि को धारण करने वाले बनो।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यजुर्वेद अध्याय १९ में पितरों का वर्णन

ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये ।
तेषाँ लोकःस्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम् ॥४५॥

(ये समनाः) जो हित करने में समान बुद्धि वाले, (समनसः) तुल्य विज्ञान वाले (पितरः) प्रजा के रक्षक न्यायाधीश लोग (यमराज्ये) न्यायकारी परमेश्वर के अथवा राष्ट्रपति के राज्य में हैं (तेषां लोकः स्वधा नमः) उनका देश और दर्शन हमें प्राप्त हो, हम उनके लिये अन्न प्रदान तथा नमस्कार करते हैं। अथवा उनकी न्याय दृष्टि अमृत रूप है, उन्हें नमस्कार हो। (यज्ञो देवेषु कल्पताम्) उनका प्रजापालन रूपी व्यवहार और न्याय, विद्वानों को स्वरूप हो और प्राप्त हो।

ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः ।
तेषां श्रीर्मयि कल्पताम-स्मिंल्लोके शतं समाः ॥४६॥

जो समान गुण कर्म स्वभाव वाले, मनुष्यों के हित रूपी समान धर्म में मन लगाने वाले, मेरे [जीवाः] जीवित पिता आचार्य आदि (जीवेषु) हम सब जीवितों के बीच वर्तमान हैं, उनकी भी शोभा और लक्ष्मी इस लोक में सौ वर्षों तक मुझ में स्थिर रहे। इस मन्त्र से भी यही सिद्ध होता है कि श्राद्ध जीवितों का ही होना चाहिये और मृतकों का नहीं हो सकता।

उदीरतामवर उत्परासउन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य इयुरवृका ऋतज्ञास्ते नो ऽवन्तु पितरो हवेषु ॥४७॥

जो छोटी अवस्था के कनिष्ठ, बड़े और मध्यम पालनकर्ता मनुष्य तथा (सोम्य) चन्द्रमा के समान शान्ति आदि गुणसम्पन्न पिता आदि हैं वे हमें (उदीरतम्) अच्छे कर्मों में प्रेरित कर। और जो (अवृकाः) चोरी आदि दोषों और शत्रुओं से रहित (ऋतज्ञ) ब्रह्म वेद धर्म और सत्य को जानने वाले पिता आदि (असुईयु) उत्तम प्राणों का धारण कर जीवित हैं वे (हवेषु नः अवन्तु) युद्ध में, सहायक होकर तथा युद्ध विद्या का उपदेश करके, हमारी रक्षा करें।

हमारा कर्त्तव्य

हमारा कर्त्तव्य है कि स्वयं मृतक श्राद्ध करना छोड़े और अन्य को भी प्रेम पूर्वक समझाकर इस असत्य कार्य से बचावें उसके स्थान में जीवित पितरों की सेवा में स्वयं तत्पर हो तथा दूसरों को भी तत्पर करें।

—:० ०:—

आर्य समाज स्थापना
शताब्दी मनाने के लिए
अपने नगर में
प्रचार पोस्टर मंगाइए ।
२०) सैकड़ा : दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा के दो महत्त्वपूर्ण वक्तव्य

आर्यसमाज का नाम लेकर कुछ व्यक्ति अपनी मनामानी कर आर्यसमाज को राजनीति में घसीटने का उपक्रम कर रहे हैं। सार्वदेशिक सभा के मन्त्री श्री ओमप्रकाश त्यागी और धर्माधिकारी आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री के कर्त्तव्य यहां अविकल प्रकाश है—

१—आर्य सभा का आर्य समाज के संगठन से किसी भी प्रकार का कोई वैधानिक सम्बन्ध नहीं है।

२—आर्य समाज एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन है। अपने निश्चित उद्घोषित सिद्धान्त एवं मन्तव्य है। वैदिक धर्मानुसार राजनीति पर भी उसकी अपनी विचारधारा है। किन्तु मूलतः आर्य समाज एक धार्मिक संस्था है।

३—अपने अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप वा कार्यक्रम का ध्यान रखते हुए आर्य समाज के सर्वोच्च संगठन सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा आयोजित आर्य सम्मेलनों का यह निश्चित मत रहा है कि आर्यसमाज को सामूहिक रूप से किसी भी देश की सक्रिय राजनीति से अलग रहना चाहिए ताकि उसके सरकारी वगैर सरकारी सदस्य सहर्ष इसकी गतिविधियों में भाग ले सकें। इसके अनुसार आर्यसमाज का प्रत्येक सदस्य अपनी इच्छानुसार किसी भी राजनीतिक दल का सदस्य हो सकता है। इस दल को आर्य समाज का राजनीतिक दल कहना न्यायोचित नहीं है।

४—आर्य समाज के राजनीति में आने या इस प्रकार की भ्रान्ति के उत्पन्न होने से स्वाभाविक रूप से इसका सबसे बड़ा दुष्प्रभाव इसके सरकारी सदस्यों तथा इसके द्वारा किए जा रहे प्रचार पर पड़ सकता है इसलिए इस भ्रान्ति का तुरन्त निराकरण आवश्यक है।

अतः आर्य समाज के मन्तव्य, प्रस्ताव और घोषणाएं हैं। इनके विपरीत आर्य समाज अथवा महर्षि दयानन्द के नाम पर कोई बात प्रसारित करना इस महान् सार्वभौम संगठन तथा इसके संस्थापक महर्षि दयानन्द के प्रति अन्याय है।

सभी यह भली-भांति अंकित कर लें कि भविष्य में आर्य सभा के किसी भी कृत्य को आर्य समाज से सम्बद्ध न समझा जाय, न उसके किसी भाषण, प्रस्ताव आदि के लिए आर्य समाज का कोई उत्तरदायित्व होगा।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्यसमाज संघटन के सर्वोपरि हित के लिए—

उच्छृंलता व अनुशासन भंग को पूरी शक्ति से दबा दिया जाय।

(आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री धर्माधिकारी सार्वदेशिक धर्मार्य सभा दिल्ली का महत्वपूर्ण वक्तव्य)

पिछले दिनों आर्यसमाज के विशिष्ट महोत्सवों से कतिपय उच्छृंखल तत्वों ने अनुशासनहीनता का परिचय देते हुए सम्मेलनों में गड़बड़ उत्पन्न करने की कुचेष्टाएं की हैं। जिससे आर्य समाज जैसे पवित्र गौरवशाली संगठन की गौरव-गरिमा को हानि पहुँचने की सम्भावना है। किसी भी दृष्टि से किसी को भी यह अधिकार नहीं दिया जा सकता कि वह किसी सम्मेलन के आयोजनों की इच्छा के विपरीत सम्मेलन में विघ्न डालने का प्रयास करे। आर्य समाजों. आर्य प्रतिनिधि समाजों व सार्वदेशिक सभा के अधिकारियों का कर्त्तव्य है कि वे समय रहते सावधान हों।

यह एक स्पष्ट तथ्य हैं कि आर्यसमाज एक विशुद्ध धार्मिक संगठन है। उस का अपन. राजनैतिक दर्शन है, परन्तु उसकी अपनी कोई एकदेशीय राजनीति नहीं है। अब तक का यही इतिहास परम्परा और नीति रीति रही है। इस संगठन को किसी देश-विदेश की राजनीति में घसीटना या संगठन को राजनैतिक रूप देना आर्यसमाज के लिए अत्यन्त हानिकर है।

यही कारण है कि कई बार आर्यसमाज के सामने राजनीति के प्रश्न उठाए गए, और चाहा गया कि इसे राजनैतिक संगठन बना कर भारत की राजनीति में भी भाग लिया जाए। पर आर्यसमाज के नेताओं ने इस विचार से असहमति ही प्रगट की।

आर्यसमाज के सर्वोच्च संगठन सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दयानन्द भवन दिल्ली ने भी इस सिद्धान्त का पूर्ण पालन किया और अब भी कर रही है।

यह बात हमें आंखों से ओझल नहीं करनी चाहिए कि आर्यसमाज जिन उदात्त वैदिक सिद्धान्तों का प्रसारक है वे सार्वभौम हैं और किसी देश-विदेश, काल विशेष व समुदाय विशेष के लिए नहीं हैं।

यदि आर्यसमाज का राजनैतिक रूप दिया जावे, जैसा कि इस समाज के सिद्धान्त से अपरिचित कुछ व्यक्ति सोचते हैं जो आर्यसमाज का विश्वव्यापी रूप

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

समाप्त हो जाएगा, और जिस देश की राजनीति को आर्यसमाज अपनी राजनीति मानेगा उस देश के एक बहुत बड़े वर्ग, राजकीय कर्मचारियों के सहयोग से भी इसे वंचित होना पड़ेगा।

धर्म के विषय में जो अधिकार राजनीति के उपासकों को प्राप्त हैं, वही सरकारी कर्मचारियों को भी प्राप्त हैं। विश्व की सम्पूर्ण मानवता को भी प्राप्त हैं। ऐसे पवित्र धर्म को एक राजनैतिक पिटारी में बन्द करना सर्वथा अनुपयोगी, अनीतिपूर्ण व धर्म और मानवता के साथ विद्रोह है।

दुर्भाग्यवश कुछ मनचले नवयुवकों ने कम्युनिज्म की विचारधारा से दीक्षित होकर आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द के नाम पर लोगों को बहकाने का कार्य आरम्भ कर रखा है। और आर्य सभा के नाम से संगठन भी खड़ा किया है। यह कहना अनुचित न होगा कि इस आर्य सभा का न तो आर्यसमाज के सिद्धान्तों व ऋषि दयानन्द के आदर्शों से कोई सम्बन्ध हैं, न इस का आर्य समाज के किसी संगठन से ही कोई लगाव है। इसके कर्णधार कहे जाने वाले समय-समय पर जो विचार प्रगट करते रहे हैं, उनसे ज्ञात होता है कि वे ऋषि दयानन्द को कम्युनिस्ट समझते हैं। और उन के वक्तव्यों की मनमानी उलटी व्याख्या करके लोगों को धोखे में डालते हैं।

सर्वत्र आर्यसमाज स्थापना शताब्दी के लिए तैयारियां की जा रही हैं। परन्तु आर्यसभा के लोग इस पवित्र अवसर पर उच्छृंखल अनैतिक व्यवहार द्वारा आयोजनों के मन्च को जबरदस्ती अपना मन्च मानने का प्रयत्न कर रहे हैं। आर्य सभा के कर्णधारों ने अलवर गुंजौटी, महाराष्ट्र गुरुकुल काँगड़ी में हुए उत्तरप्रदेश के वार्षिक अधिवेशन, मेरठ के महोत्सवों पर समारोहों में विघ्न डालने का जो कुत्सित प्रयास किया है, वह प्रत्येक स्तर पर निन्दनीय है, और आर्यसमाज के लिए, इनकी भविष्य नीति का प्रतीक है। ये लोग पंडाल जला देंगें···झगड़े करा देंगें···हुल्लड़ मचा देंगे ··मारपीट करेंगे ऐसी-ऐसी धमकी देकर आर्यसमाज के समारोहों के मन्च को हाथ में लेने की योजनाएं बनाते हैं।

इस उद्दंडता को आर्यसमाजें आर्य प्रतिनिधि सभाएं, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, आर्य जनता समय रहते पूर्ण शक्ति से कुचल दे। तभी ऋषि दयानन्द के द्वारा स्थापित महान् आर्यसमाज की वेदी की सुरक्षा हो सकेगी।

धन्यवाद !

मेरी प्रार्थना पर वेद भाष्य प्रकाशन के लिए जिन्होंने आशीर्वाद सहयोग दिया, उनके प्रति अति आभारी हूँ। प्रभु मुझे बल दें कि मैं सभी के आशीर्वाद के अनुसार कार्य कर सकूँ। मुझे विश्वास है कि जो मौन रहे हैं वे हमारी परीक्षा ले रहे हैं। समय आएगा तो उनका वरद हस्त भी वेद प्रचार के लिए मिलेगा। —राकेश रानी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी हरिद्वार की औषधियां सेवन करें

गुरुकुल कासारि

खांसी की अपूर्व गुणकारी औषधि

उपयोग—किसी भी कारण से हुई खांसी, नजला, जुकाम आदि में लाभदायक है।

सेवन विधि:—दिन में तीन बार छोटी चम्मच लेकर उंगली से चाटें

आँखों के अनेक रोगों के लिए संसार प्रसिद्ध

भीमसेनी - सुरमा

च्यवन प्राश

उत्तम, स्वादिष्ट, रसायन

शरीर को बलिष्ठ एवं कान्तिमान बनाता है

शारीरिक क्षीणता तथा फेफड़ों के लिए सिद्ध आयुर्वेदिक रसायन

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी

पो० गुरुकुल कांगड़ी (सहारनपुर)

शाखा कार्यालय—चावड़ी बाजार, दिल्ली

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

—प्रो० सन्तराम आनन्द

रामायण और रामराज्य

रामायण भारतीय साहित्य में एक प्रसिद्ध महाकाव्य है। इसके कई रूप हैं; जैसे आदि रामायण, अध्यात्मरामायण, अग्निवेश तथा तुलसीदास का रामचरितमानस आदि। यह तो आप जानते ही होंगे कि इसका प्रसार तथा मान्यता केवल भारत में ही नहीं, अपितु कई अन्य देशों में भी है। विशेषकर दक्षिण-पूर्वी एशिया में। और यह इतनी प्रिय है कि इसका प्रकाशन बाइबिल को छोड़ कर अन्य सभी धर्म-पुस्तकों से अधिक है। कलाकारों ने भी इस में वर्णित कई घटनाओं को नृत्य का रूप देकर केवल इसको आधुनिकता ही प्रदान नहीं की, अपितु मानव के आंतरिक जीवन पर भी पर्याप्त प्रभाव डाला है, अर्थात्, इसको मर्यादा में बंधे रहने के लिए प्रेरित भी किया है।

'आदि काव्य' वाल्मीकि मुनि की राम-चरित्र सम्बन्धी एक अद्वितीय तथा बेजोड़ रचना है। यह एक तथ्य है कि वास्तविक कवि थापे नहीं जाते, अर्थात् वे बनते नहीं या बनाए नहीं जाते, प्रकट हुआ करते हैं। ऐसा ही आदि कवि वाल्मीकि के संबन्ध में माना जाता है। इस प्रसंग में एक कथा है कि एक दिन मुनि जी जब तमसा नदी की ओर से मध्याह्न-स्नान के बाद लौट रहे थे, तो उन्होंने किसी व्याध द्वारा निहत एक क्रौंच को देखा। इससे मुनि का दिल भर आया और भावावेश में उनके मुख से यह अनुष्टुप (बत्तीस अक्षरों वाला) छन्द निकल पड़ा—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

अर्थात्, हे व्याध! तू ने काम के वशीभूत पक्षी के जोड़े में से एक को मार दिया है, तेरा कभी भला नहीं होगा।

यह शापप्रद छन्द अन्तः संवेदना से प्रस्फुटित हुआ था। ऋषि ने इसी को अपनी रचना का आधार बनाया और लगभग सारी रामायण की रचना इसी छन्द में कर दी। इस छन्द में जो शाप है, वह मर्यादा के भंग करने वाले व्याध के लिए शाश्वत है, परन्तु ऋषि ने अभिशाप से मुक्त होने के लिए जिस उपचार का वर्णन किया है, वह है मर्यादा का पालन करना, और जो कोई राजा ऐसा करता है उसका शासन ही 'राम-राज्य' कहलाता है। इस आदि काव्य के पठन-पाठन से यह भी जान पड़ता है कि इसके रचयिता का गूढ़ संबन्ध अयोध्या के राजाओं के साथ था। शायद इसीलिए इन्होंने अपने 'राम-राज्य' का आदर्श प्रस्तुत करने के लिए जिस आदर्श चरित्र की स्थापना की, वह अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र 'राम' ही थे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

राम राज्य क्या है ? एक प्रजा-सुखकारी शासन का नाम है, जो लोकोन्मुख हुआ करता है। राम का शासन भी, जिसका इस काव्य में वर्णन किया गया है, ऐसा ही था। परन्तु वह आज के उस लोकतंत्र जैसा नहीं, जिस में इक्कावन (५१) का कुशासन उनचास (49) पर छाया रहता है; अपितु वह एक ऐसी राज्य-पद्धति थी जिसमें एक तुच्छ व्यक्ति की भी राय को उतनी ही मान्यता दी जाती थी जितनी कि एक प्रसिद्ध राजपुरुष की राय को। इसीलिए, वाल्मीकि मुनि का 'रामराज्य' एक पूरा युग बीत जाने के बाद भी इतना प्रशस्त है, जितना कि उस समय था। महात्मा गांधी ने भी अपने स्वतन्त्र देश की राज्य पद्धति का जो स्वप्न देखा, वह वही राम-राज्य था।

रामायण काल में कौशल देश की राजधानी अयोध्या थी, और राजगद्दी पर विराजमान थे महाराजा दशरथ। इनकी तीन रानियां थीं और चार पुत्र। सबसे बड़ी थी कौशल्या, जिसने राम को जन्म दिया था, सबसे छोटी थी सुमित्रा, जिसके दो पुत्र थे—लक्ष्मण और शत्रुघ्न और मंझली थी कैकैयी, भरत की माता। महाराज की तीन पत्नियों का होना एक दोषयुक्त व्यवस्था मानी जा सकती है। परन्तु ऐसा होते हुए भी अंतःपुर में एक स्वस्थ और सुखद वातावरण था। राम सबको प्रिय थे और राम भी अपनी तीनों माताओं का एक समान आदरमान करते थे, विशेष कर कैकेयी का, और इसका भी पुत्र-स्नेह राम के साथ अधिक था। शायद इसका कारण था कि कैकेयी अन्य रानियों के समान केवल एक गृहस्वामिनी ही नहीं थी, अपितु राजकाज में भी भाग लेती थी। युद्धोपकरणों में भी, विशेषकर रथ-विद्या में, निपुण थी। आधुनिक परिभाषा में वह सैनिक रथोपकरण विभाग की मंत्री समझी जा सकती है। एक बार युद्धक्षेत्र में महाराज दशरथ के रथ में कुछ दोष उत्पन्न हो गया, जिससे उन की हार हो जाने की संभावना थी। परन्तु कैकेयी ने जो युद्ध में उनके साथ थी, तत्काल उसे ठीक कर दिया, जिससे प्रसन्न हो महाराज ने उसे दो वर देने का वचन दिया।

राज्याभिषेक—महाराज ने जब अपनी आयु के तीसरे भाग में पदार्पण किया, तो साधारणतया उन्हें राज्य-कार्य से अलग होने की सूझी, परन्तु ऐसा करने से पहले उन्हें किसी योग्य राजकुमार को राजगद्दी पर नियुक्त करना जरूरी था। इसके लिए उन्होंने राम को चुना और नियमानुसार जब राज्य-सभा ने इसका समर्थन कर दिया, तो राजकीय आज्ञापत्र जारी कर दिया गया और उद्घोषणा की गई कि कल प्रातःकाल ही बड़ी धूमधाम से राज्याभिषेक-समारोह मनाया जाएगा। यह जानकर नागरिक हर्ष के अतिरेक से गद्‌गद् हुए समारोह में भाग लेने के लिए तैयारियां करने लगे राजप्रसाद में तीनों रानियां आनंदित हुई अपने-आप को राजमाता कहलाने के मीठे स्वप्न देखने लगीं। कैकेयी विशेष रूप से प्रसन्न थी, क्योंकि उसका राम के साथ अधिक प्रेम था।

उस समय के शासनतंत्र में एक 'देव-सभा' भी हुआ करती थी, जो राज्य सभा के कार्यों की छानबीन करती थी। राज्याभिषेक का समाचार पाकर उस सभा का एक आपतकालीन अधिवेशन (Emergency meeting) हुआ जिसमें राम के गुणों-अवगुणों पर विचार किया गया। देव-सभा ने राजकुमार राम को हर प्रकार से राजगद्दी के योग्य पाया। परन्तु यह देखा कि राम को अभी केवल उत्तरी भारत का ही ज्ञान है और वह अपने राज्य के दक्षिण-पथ से अनभिज्ञ है। किसी राजगद्दी के संभालने से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पहले उसे अपनी दूर-दूर बसी हुई प्रजा की निकटतम जानकारी भी होनी चाहिए। इसलिए यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ कि राजतिलक को अभी स्थगित किया जाय और राम चौदह वर्ष दक्षिणी वेश-भूषा में वहां के लोगों में निवास करे, जिससे वह उनके मनोभावों को ठीक-ठीक समझ सके। परन्तु यह हो कैसे ? क्योंकि कल प्रातःकाल ही तो राज्यारोहण उत्सव है। केवल आज की रात ही बीच में है।

ऐसे सोच-विचार में पड़े हुए देवों को कैकेयी की सूझी। वह राज्य-कार्यों को समझती थी और ऐसी मर्यादा-युक्त परम्परा को स्थिर रखने के लिए वह अपने तन-मन और धन का त्याग भी कर सकती थी। महाराजा से प्राप्त किए दो वरों के अनुसार वह राम के लिए दक्षिण वनों की ओर वनवास और अपने पुत्र भरत के लिए राजगद्दी मांग कर हमारे प्रयत्न को सफल बना सकती है। परन्तु इसको तुरंत कार्यान्वित करने के लिए शायद उसको तिरिया चरित्तर रचना पड़े, जिससे उसकी कीर्ति तथा यश की हानि हो। बड़े-बड़े प्रसिद्ध नेता अपने मन्तव्य के लिए सब कुछ त्याग सकते हैं, सिर भी कटा सकते हैं, परन्तु यश और कीर्ति को नहीं। क्या कैकेयी ऐसा करेगी ? बड़ी संभावना है; किन्तु यह प्रस्ताव उसके समक्ष कैसे रखा जावे ? इसके लिए उनका ध्यान कैकेयी की चतुर दासी मंथरा की ओर गया, जिसके द्वारा देवों को सफलता हुई। रात को जब महाराज का राजप्रासाद में आगमन हुआ, तो वे कैकेयी को एक निराली स्थिति में देखकर भौंचक्के से हो गए ओर इसका कारण जानकर वे मूर्च्छित होकर गिर पड़े और ऐसी ही स्थिति में बोलने लगे कि मैं भरत को राज्य दे दूंगा, परन्तु राम की जुदाई भारी है, इसके लिए यदि तू चाहती है, तो मैं राम को न केवल चौदह वर्ष के लिए अपितु सदा के लिए गुरुगृह में भेज सकता हूँ। यदि कैकेयी को अपने पुत्र के लिए ही राजगद्दी की इच्छा होती, तो ऐसे प्रस्ताव को वह तत्काल ही मान लेती, क्योंकि इससे वह न केवल चौदह वर्ष के लिए अपितु सदा के लिए राज-माता हो जाती, कुछ समय पश्चात् जब राम वहां आए, तो कैकेयी ने उन्हें सारी बात समझा दी, जिससे राम ने राजतिलक को स्थगित करा दिया और साथ ही वन जाने की तैयारी भी कर ली।

राम अपने भाई लक्ष्मण और अपनी पत्नी सीता सहित दक्षिण की ग्रामीण वेशभूषा में चित्रकूट पहुँच गए और फिर इसी स्थान को अपना मुख्यावास बनाकर वहां की प्रजा की गतिविधियों में भाग लेते हुए उसकी भावनाओं का निरीक्षण भी करने लगे। राम का बर्ताव तथा व्यवहार उन लोगों के साथ किसी प्रकार के भेद-भाव वाला नहीं था। न वहां उस समय सवर्ण जातियों तथा अनुसूचित जन-जातियों की कोई बात थी और न ही उत्तर-दक्षिण का कोई प्रश्न था। इस संबंध में रामायण में उल्लेख है, कि राम एक बार घूमते-फिरते एक ग्रामीण की झोंपड़े में जा पहुँचे। अन्दर बैठी एक वृद्ध भीलनी ने इन्हे पहचान लिया, गद्गद हुई स्वागत के लिए उत्सुक हो उठी। किसी प्रकार के नैवेद्य को घर में ढूंढने लगी। बेर के अतिरिक्त कुछ न मिला, और वह भी न जाने खट्टे हों या मीठे। मीठे-मीठे चुनने के लिए इनको चखने लगी, और ऐसे चयन किये हुए कुछ बेर अपनी हार्दिक इच्छा जताने के लिए महाराज को भेंट किए। साधारण परम्परा तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से ये अखाद्य हो चुके थे, परन्तु उन्होंने बड़े चाव से खा लिए। क्यों ? कारण यह कि आदर-सम्मान तथा श्रद्धा के उत्तर में न तो स्वास्थ्य का तर्क ठहर सकता है और न ही कोई प्रथा। न खाने से भीलनी व्याकुल हो उठती और अपनी श्रद्धा को मूर्तिमान् न कर पाने के कारण एक मानसिक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
डाह की शिकार हो जाती। परन्तु राम के लिए प्रेम और समानता की स्तर सब से ऊँचा था। युक्त व्यवहार क्या है? भगवान् का यह आचरण ही इसका सही उत्तर है। आजकल की फैली हुई छूआछूत के लिए यह एक उद्जन बम है।

ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता गया, राम अपने मर्यादानुकूल चरित्र के कारण सर्व-जन प्रिय होने लगे। पर रावण को जो अपनी तानाशाही सत्ता को स्थापित करना चाहता था, यह अच्छा न लगा, जिससे उसके मन में द्वेष की आग भड़क उठी; विशेषकर जब राम ने बाली को जो रावण की सहायता से अपने छोटे भाई सुग्रीव की गद्दी को छीन कर आप राजा बन बैठा था, मार कर गद्दी वास्तविक अधिकारी सुग्रीव को सौंप दी। इसलिए रावण ने राम को अपने उद्देश्य से पतित करने की ठान ली। इसके लिए उसने अपनी विवाहिता बहिन शूर्पणखा से विचार-विमर्श किया और उस को अपनी चतुराई से राम का पतन के लिए तैयार भी कर लिया। परन्तु वह कुछ न कर सकी, इससे रावण आपे से बाहर हो गया और अकेली बैठी सीता का अपहरण कर लिया। वह घटना एक बड़े युद्ध का कारण बनी, जिसमें रावण मारा गया। राम रावण के भाई विभीषण को राज्याधिकार से युक्त कर और फिर चौदह वर्ष के बीत जाने पर लक्ष्मण तथा सीतासहित अयोध्या वापस लौट आए।

भरत ने बड़ी प्रसन्नता से अपने भाई का स्वागत किया और फिर राज्य-सिंहासन को अपने उत्तराधिकारी भाई को सोंप दिया। राम अब 'राम-राज्य' के स्थापन करने में पूर्ण रूप से जुट गये।

ऐसे आदर्श राज्य के निर्माण करने के लिए यह अत्यावश्यक है कि शासनीय तथा प्रशासनीय कृत्य सर्व-मान्य हो और राजपुरुषों का चरित्र केवल संदेह रहित ही न हो, जन साधारण ऐसा समझें भी, जिससे उनकी ओर कोई उंगली न उठा सके। यदि किसी की उंगली किसी की ओर उठती है, तो उसे तत्काल कुर्सी छोड़ देनी चाहिए, यदि किसी बड़ी प्यारी वस्तु का त्याग करना पड़े, तो विलंब न करे। ऐसा ही राम ने किया। जब उन्हें पता लगा कि जनता, किसी नासमझी के कारण ही सही, निरापराध सीता को राजमाता के रूप में मानने में संकोच करती है, तो उन्होंने बिना किसी प्रकार के टालमटोल के सीता को त्यागने की ठान ली। सीता ने भी अपने पति को जनसाधारण की दृष्टि में निर्दोष बनाए रखने के लिए राजगृह का छोड़ गुरु गृह में वास करना अच्छा समझा। आदि कवि के अपने शब्दों में—राम ध्यान-पूर्वक बैठे हैं, और एक गुप्तचर लोक-चर्चा सुनाने के लिए इस प्रकार कह रहा है—

हत्वा वै रावणं संख्ये सीतामाहृत्य राघव:।
अमर्ष पृष्टत: कृत्वा स्ववेश्म पुनरानयत् ॥ वा० उत्त० का०, ४३, १६।

अशोक वाटिका में रही सीता को जो महाराज अपने साथ लाए उसके चरित्र के प्रति उनको अमर्ष होना चाहिए था। और फिर कहा कि पुरवासी विचारते हैं कि—

अस्माकमपि दारेषु सहनीयं भविष्यति।
यथा हि कुरुते राजा प्रजा तथाऽनुवर्त्तते ॥ वा० उ० कत्ता०, ४३,१९

हमें भी अब अपनी स्त्रियों की बातें सहनी पड़ेगी, क्योंकि जैसा राजा करता है, वैसा ही प्रजा भी। इसी आवाज से महाराज जनसाधारण की इच्छा को भांप गए और अपनी प्रिय अर्द्धांगिनी को त्याग दिया यह कहते हुए—

अप्यहं जीवितं जह्यां युष्मान् वा पुरुषर्षभान्
अपवादभयाद् भीत: किं पुनर्जनकात्मजाम्। वा० उत्त० का०, ४५,१४-१५।

वाल्मीकि के अनुसार यह है, रामराज्य की एक झाँकी।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

व्यंग्य

मक्खन लगाना–कला नं० ६५

—श्रीमती मिथिलेश, एम० ए०

जी हाँ ! बात मक्खन लगाने की है, पर ब्रेड पर मक्खन लगाने की नहीं। वहाँ तो अगर थोड़ा सा गिर जाए या ब्रेड पर कम ज्यादा लग जाए तो कुछ बनता बिगड़ता नहीं। मुँह अपना है कोई तकल्लुफ नहीं। पर यहां, जबकि हम बात कर रहे हैं, अगर आप मक्खन लगाने में जरा भी चूके, गए काम से। गलत-फहमी में मत रहियेगा। यह वह मक्खन नहीं जिसे कृष्ण जी चुराकर मुंह पर लपेटा करते थे, यह वह मक्खन नहीं जो पैकेट में बन्द बाजार में मिलता है. यह वह मक्खन नहीं जिसे आप ब्रेड पर लगाकर खाते हैं, यह वह मक्खन नहीं, जो गाजियाबाद के चौपले मन्दिर पर प्याऊ के सामने वाली दुकान पर मशीन से निकाला जाता है, यह वह मक्खन नहीं, जो चेचक के दागों पर मला जाता है, यह है—लाख दुखों की एक दवा। बिना योग्यता, बिना सिफारिश, बिना मेहनत और बिना टके-धेले के ही आपके पौ बारह। शर्त इतनी ही है कि मक्खन जरा ढंग से लगाइए। इस बातों के मक्खन को ढंग से लगाने से बिगड़े सरकार बस में आ जाते हैं। आप का जाता भी क्या है ? जरा सा लगाया सारी मुश्किलें आसान। फिर क्यों न आजमायें ?

इसको आजमाने में बहुत जल्दबाजी अच्छी नहीं। 'मक्खन लगाना" कला है। इसका शनैः शनैः अभ्यास करना पड़ता है। क्योंकि अगर किसी ने मक्खन लगाने में असावधानी बरती, जिन्दगी भर की मुसीबत मोल ले ली समझो। पर इसके लिए आपको किसी कला-केन्द्र में जाने की आवश्यकता नहीं। हम तो परोपकारी जीव हैं कर कर मदद आपकी। बदले में हम इतना ही चाहेंगे कि मक्खन लगाने की कला का प्रयोग हम पर करके मत देखियेगा।

अच्छा हम बताते हैं—

यह कला नं० ६५ है। इसकी इतिहास बहुत पुराना है। इसकी 'ऐग्जैक्ट डेट' तो अधिक मक्खन लग जाने के कारण अपनी नजर से फिसल गई है। पर हाँ इतना अच्छी तरह याद है कि असुर इस कला में बहुत प्रवीण थे। और इसी लिए वे शंकर जी से बार-बार वरदान प्राप्त करने में सफल रहे। इस कला का देवताओं से पहले और काफी दिनों बाद का इतिहास अभी अन्धकार के गर्भ में है। नन्द वंश के अन्तिम दिनों में इस कला की बहुत उन्नति हुई। मुगलकाल में मुल्ला दो प्याजा इस कला का विशेषज्ञ रहा। मुगल शासन के अन्तिम दिनों में तो यह कला पूर्ण निखार पर आ गई। मुगल वंश के अन्तिम बादशाह बराबर इन मखनिया कलाकारों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

से घिरे रहते थे। इस कला के विकास में ही वे इतने व्यस्त हो गए कि अंग्रेज भारत में अपने पैर जमाते रहे, और इन्हें इस कला की सच्ची सेवा से फुरसत न मिली। अन्त में इस कला-साधना के चक्कर में राज-पाट से हाथ धो बैठे। अंग्रेजी शासन काल में भी इसके विशेषज्ञों की कमी नहीं रही। हम बड़े खुश हैं कि स्वाधीन भारत में कांग्रेस राज्य में भी इस कला का विकास दिन दूनी रात चौगुनी गति से हो रहा है। जन-साधारण में मखनिया कलाकार मिलते हैं, उनको लोग सम्मान की दृष्टि से नहीं देखते। अगर आप इस कला में निष्णात होना चाहते हैं तो बात का मक्खन लगाते हुए भी आप यही कहिए—"मक्खन लगाना तो मुझे आता नहीं मैं तो सीधी सच्ची बात कह रही हूँ (या कह रहा हूँ।) कमाल जब है, आप जिसको मक्खन लगायें उसको पता न चले कि मक्खन लगाया जा रहा है। हर एक का मक्खन लगाने का ढंग अपना अपना और विशिष्ट होना चाहिए। जिन्दगी में मक्खन बहुत लोगों पर लगाना पड़ता है। उन सब को मक्खन लगाने के अलग-अलग तरीके तो इस छोटे-से निबन्ध में नहीं दिए जा सकते। किन-किन को मक्खन लगायें कुछ उदाहरणार्थ आपकी सेवा में प्रस्तुत हैं। बैंक बेलेन्स निल हो। घरवाली साड़ियों के लिए जिद पर अड़ी हो तो बातों के मक्खन से काम निकालिए। पतिदेव मूड में नहीं हैं पैसों की जरूरत है, पत्नी को चाहिए मक्खन लगाए। कहीं सर्विस करते हैं, शरीर भारी है ज्यादा चला फिरा नहीं कर सकते तो अपने बास को मक्खन लगाते रहिए जिससे कि काम न होने से खतरे की घन्टी न बजे। किराया कई महीने का चढ़ गया है जेब खाली है तो मकान मालिक को बातों का मक्खन लगाते रहिए। बस में कोई हसीना बैठी है आप भी उसी बस से सफर कर रहे हैं, वह आपकी तरफ देखती ही नहीं निहायत शराफत से उसके सौन्दर्य प्रसाधन, वस्तु चुनाव आदि की प्रशंसा का मक्खन मौका देखके लगाइए। देखिये, आप अपने काम में, कितने सक्सेसफुल रहते हैं। आप विद्यार्थी हैं, कोई प्राध्यापक आपके काबू से बाहर है, इस्तेमाल कीजिए अपना यही बेमिसाल नुस्खा। उसके पढ़ाने, तथा एक आध आर्टिफिशल गुण का गान रूपी मक्खन लगाइए बस समझ लीजिए हो गया काम आपका वह हो गई आप पर फिदा। अगर आप टीचर हैं कोई विद्यार्थी काबू से बाहर है तब भी आपको मखनिया कलाकार बनके काम निकालना होगा। मखनिया कलाकार बनने के लिये आपको बातों का जमा खर्च ज्यादा करना पड़ेगा। शायद कभी कभी चपरासीगीरी के से काम करने की नौबत आजाये पर इसमें आपको घबराना नहीं होगा। अपमान की अनुभूति करके घुलने से काम नहीं चलेगा।

किसको कहां मक्खन लगाने पर मक्खन कला का क्या पर्टिकुलर मॉडल होगा, बताने में तो बड़ी २ पोथियां भर जायेंगी। पर Art is long time is fleeting अत; इस बात को हमें यहीं समाप्त करना पड़ेगा। खैर.........

यकीन मानिये जब कलाओं की लिस्ट बनी थी उसमें इसका (मक्खन लगाने की कला) भी नाम था। पर उसपर मक्खन इतना लग गया कि चिकनाहट के कारण नजर ही न पड़ी अतः कलायें ६५ से ६४ रह गईं। कलाओं की सूची में इस अनुपम कला का योगदान रह गया। आज जब चित्रगुप्त की पुरानी फाइलें देखीं तब हमें इसका ज्ञान हुआ। इस लिए आज ही हम एक घोषणापत्र जारी कर रहे हैं—"मक्खन लगाना—कला नं० ६५" अब से कोई ६४ कला कहने की गुस्ताखी न करे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

॥ ओ३म् ॥

दयानन्द-संस्थान:

[पंजीकृत—न्यास]

द्वारा प्रकाशित

वैदिक धर्म प्रचारार्थ

पुस्तकों–ट्रैक्टों आदि

का

सूची-पत्र

सभी आदेशों के साथ चौथाई धन अवश्य भेजें

अपने निकटतम रेलवे स्टेशन का नाम लिखें

कमीशन नियमानुसार २५ प्रतिशत या अधिक । सैकड़े के रेट निश्चित : उन पर कमीशन नहीं

●

प्रबन्धक

जन-ज्ञान-प्रकाशन

१५६७ हरध्यानसिंह मार्ग करौल बाग (३१ नाई वाला) नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आकर्षक अंग्रेजी साहित्य

1. Light of Truth.

अंग्रेजी सत्यार्थ प्रकाश—महर्षि दयानन्द के महान् ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश का मास्टर दुर्गाप्रसाद कृत यह अनुवाद प्रत्येक दृष्टि से अनुपम है। छपाई, कागज, जिल्द सभी दृष्टि से अत्यन्त आकर्षक यह ग्रन्थ लागत मात्र पर दिया जा रहा है। पृष्ठ ५७८। साइज डिमाई आठवाँ।

सादी जिल्द मूल्य १०)
कपड़े की बढ़िया जिल्द १२)

2. An Introduction to the Commentry of the Vedas. Rs. 8.00

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका का पं० घासीराम कृत अंग्रेजी अनुवाद
मूल्य ८) मात्र सजिल्द।

3. TEACHINGS OF SWAMI DAYANANDA

महर्षि दयानन्द की विचार धारा और शिक्षाओं से सभी को परिचित कराने के लिए अनुपम पुस्तक।

4. TEN COMMANDMENTS OF THE ARYA SAMAJ

Re. 1.00

आर्यसमाज के १० नियमों की अभूतपूर्व व्याख्या : स्व० पं० चमूपति जी की लेखनी से। स्वामी जी के तिरंगे चित्र सहित मूल्य १)

5. MESSAGE OF THE ARYA SAMAJ TO THE UNIVERSE

भारतेन्द्र नाथ साहित्यालङ्कार लिखित—आर्य समाज का संदेश फैलाने हेतु प्रभावशाली पुस्तिका—जिसका ८ भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

—मूल्य ५० पैसे।

6. VEDIC-PRAYER Rs. 2.50

संध्या, प्रार्थना मंत्र, हवन, स्वस्तिवाचन, शांतिप्रकरण, ईशोपनिषद् आदि सभी की पूर्ण व्याख्या हिन्दी अंग्रेजी में एक साथ—और चुने हुए भजन, भेंट के लिए अत्युत्तम।

मूल्य २) ५०

7. DAYANAND THE GREAT (तीसरा नया संस्करण)

पं० वेद मित्र ठाकुर लिखित प्रभावशाली ट्रैक्ट मूल्य १५ पैसे

8. AN INTRODUCTION TO THE ARYA SAMAJ

(तृतीय संस्करण) आर्यसमाज से सभी को परिचित करने के लिए प्रभावशाली ट्रैक्ट

मूल्य १५ पैसे

9. THE GREAT GAYTRI

मूल्य २० पैसे। १५) सैंकड़ा

गायत्री मंत्र का यह सुन्दर अंग्रेजी अनुवाद, प्रत्येक दृष्टि से आकर्षक है। ७५) रिम के सर्वश्रेष्ठ कागज पर रंगीन मोहक छपाई।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

10. THE VEDIC FUNDAMENTALS Rs.2.50
वैदिक धर्म के सिद्धान्त समझने हेतु प्रभावपूर्ण मार्ग दर्शन

11. VEDIC-LIFE
वैदिक जीवन पद्धति पर चुने मंत्रों का अर्थ सहित संग्रह मूल्य २) ५०

12. What is Yoga ? योग के सम्वन्ध में मार्गदर्शन—मूल्य १५ पैसे

13. The man and His Religion
स्वामी सत्यप्रकाश जी लिखित एक ऐसा ग्रन्थ जो अपूर्व है— मूल्य १)

14. Life of Swami Dayananda—D. N. Vasudeva····· मूल्य १)
ऋषि का जीवन अनेक चित्रों सहित

15. Christianity and The Vedas
पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड लिखित मूल्य १.५०

16. Bible in the Balance चार्ल्स स्मिथ द्वारा लिखित
मूल्य १५ पैसे

17. A challenge to the christian faith—स्वामी श्रद्धानन्द ५ पैसे

18. Essence of the Vedic Religion मूल्य १५ पैसे

19. The Fundamentals of the Arya Samaj मूल्य १५ पैसे

वैदिक हिन्दी साहित्य

१—**वैदिक सत्संग पद्धति** (हिन्दी) नया संस्करण मूल्य ६० पैसे
केवल हिन्दी में प्रत्येक मंत्र के साथ, उनका अर्थ दिया गया है। २८ पौंड बढ़िया कागज, तिरंगा बढ़िया आवरण, चुने हुए भजन। ८४ पृष्ठ। मूल्य ६० पैसे। ५० रु० सैंकड़ा।

२—**गायत्री शतक**—१०० गायत्री मंत्रों की प्रभावपूर्ण व्याख्या मूल्य १)

३—**उपनिषद्—वचनामृत। पं० दीनानाथ सिद्धान्तालंकार**— मूल्य ४० पैसे
उपनिषदों का सार पुस्तक में प्रभावशाली ढंग से अंकित है।

४—**धर्मग्रन्थावलोकन**—संसार के प्रमुख धर्म ग्रन्थों का प्रामाणिक परिचय अनुपम ग्रंथ-प्रिंसीपल रत्नचन्द शर्मा एम० ए० लिखित— मूल्य १)५०

५—**गीत मंजरी**—नया तीसरा बड़ा संस्करण मूल्य १)४० । १००) सैंकड़ा।
ईश्वर भक्ति के गीत और प्रभु से प्रार्थना करते हुए यदि आप सचमुच अपने आपको भुलाना चाहते हैं तो "गीत-मंजरी" का सहारा लीजिए।

६—**ईश्वर-भक्ति**—स्वामी सर्वदानन्द जी द्वारा लिखित अनमोल रचना।
—मूल्य ८० पैसे

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

७—**मोक्ष का वैदिक मार्ग**—आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री व योगिराज जगन्नाथ जी पथिक का अनुपम मार्ग दर्शन —मूल्य ५० पैसे

८—**ईशोपनिषद्** —मूल्य ५० पैसे

पं० हरिशरण जी सिद्धान्तालंकार लिखित उपनिषद् की अनुपम व्याख्या।

९—**भारत की अवनति के ७ कारण**—

ब्र० जगदीश एम० ए० की लोहलेखनी द्वारा लिखित। पृष्ठ ६८

मूल्य ५० पैसे

१०—**वैदिक-अध्यात्म—पं० वीरसेन वेदश्रमी** मूल्य ८० पैसे

मंत्रों का यह अध्यात्मपरक भाष्य आपके मन मन्दिर में नई ज्योति उत्पन्न करेगा, आकर्षक आवरण, बढ़िया कागज।

११—**शतक-त्रयी**—वेद के ३०० मंत्रों का अर्थ सहित अनुपम संग्रह— **मूल्य १)**

मंत्रालय और स्वाध्याय के लिए

१२—**नीति-दोहावली** मूल्य ८० पैसे

प्रत्येक आवश्यक विषय पर उपयोगी दोहे, कविताएं और प्रमाण जीवन के प्रत्येक संदर्भ में प्रेरक मार्ग दर्शन—आचार्य जगदीश विद्यार्थी द्वारा संग्रहीत।

१३—**प्रार्थना सुमन**— ५० पैसे

पं० चन्द्रभानु लिखित हिन्दी वा अंग्रेजी में वेद मन्त्रों की प्रेरक भावपूर्ण व्याख्या।

१४—**मर्यादा पुरुषोत्तम राम—पं० दीनानाथ सिद्धातालंकार** —मूल्य ८० पैसे

श्रीराम के इस जीवन चरित्र का अधिकाधिक प्रचार राष्ट्र को सुदृढ़ करेगा।

१५—**ज्ञान ज्योति** मूल्य ३)

'ज्ञान' मनुष्य को मनुष्य बनाता है वह ज्ञान वेद की पवित्र ऋचाओं में हमारा मार्ग दर्शन कर रहा है। जीवन के प्रत्येक अंग पर वेद का आदेश स्व० स्वामी सत्यानन्द जी की लेखनी से। उनका माधुर्य वेद की ऋचाओं का हृदय-ग्राही स्वरूप प्रस्तुत कर रहा है।

१६—**मां गायत्री**—तीसरा संस्करण—मूल्य ८० पैसे, ५०) सैकड़ा इसमें महर्षि दयानन्द, महात्मा आनन्द स्वामी, स्व० प्रभु आश्रित जी, स्वामी समर्पणानन्द जी, के अनुपम विचार।

१७—**वैदिक-सिद्धान्त** २)

वैदिक सिद्धान्त अकाट्य हैं। यह स्वयं सिद्ध बात ग्रन्थ पढ़कर हृदयंगम हो जाती है। आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध विद्वान् श्रद्धेय पं० यशःपाल सिद्धान्तालंकार की विद्वता, प्रतिभा का चमत्कार देख आप मुग्ध हो जायेंगे। प्रत्येक दृष्टि से अनुपम।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

१८—आर्य समाज के नियम ८० पैसे

ज्ञान की अनुपम खोज महर्षि के शिष्य पं० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या द्वारा लिखित पहला संस्करण १८९७ में छपा था। आर्यसमाज को जानने समझने का अपूर्व साधन है।

१९—लाल आंधी ८० पैसे

कम्यूनिज्म क्या है, कैसा है? यह क्या करेगा? इसका असली रूप महात्मा नारायण स्वामी, वैद्य गुरुदत्त और श्री चिरंजीलाल प्रेम की प्रभावपूर्ण लेखनी द्वारा प्रचार के लिये प्रस्तुत है।

२०—वैदिक समाजवाद—पं० वीरसेन वेदश्रमी —८० पैसे

२१—वैदिक विचारधारा २५ पैसे

२२—संक्षिप्त महाभारत मूल्य ५.००

स्व० पं० संतराम लिखित बढ़िया कपड़े की जिल्द

२३—बोध रात्री [महाकाव्य] मूल्य ३.००

महर्षि का मार्मिक प्रेरक जीवन काव्य में पढ़कर आपको नयी स्फूर्ति मिलेगी।

२४—वेदों का यथार्थ स्वरूप—पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड—(सजिल्द)—मूल्य ६)

वेद के सम्बन्ध में सभी भ्रांत धारणाओं का प्रभावशाली विद्वत्तापूर्ण समाधान अपने ढंग का अनोखा ग्रन्थ।

२५—ज्योति स्तंम्भ—१२ आर्य नेताओं का रंगीन चित्रों सहित प्रभावपूर्ण जीवन। मूल्य ३)

२६—वेद और बाइबिल—पं० दीनानाथ सिद्धांतालंकार मूल्य ७५ पैसे

२७—सत्यार्थ प्रकाश—राज संस्करण सजिल्द २२५) सैकड़ा

२८—सत्यार्थ प्रकाश=उपहार संस्करण कपडे की जिल्द ३:५) सैकड़ा

२९—उपनिषद् कथामाला—महात्मा नारायण स्वामी की प्रभावपूर्ण सरल रचना। मूल्य ६० पैसे।

३०—स्वामी श्रद्धानन्द—जीवन चरित्र मूल्य ५० पैसे

३१—वेदामृत=स्व० पं० दामोदर जी सातवलेकर व स्वामी वेदानन्दजी द्वारा संपादित वेद मंत्रों का अनुपम संग्रह मूल्य ३)

३२—धर्म का मार्ग—पं० सुरेश चन्द्र विद्यालंकार— मूल्य ५० पैसे

३३—उपनिषद् त्रयी—पं० शिवदयालु कृत—यजुर्वेद के तीन अध्यायों की हिन्दी व अंग्रेजी में प्रेरक व्याख्या ८० पैसे

३४—अमृत-पथ—जीवन को सुन्दर आनन्दमय बनाने का मार्ग दर्शन ३)

३५—स्वामी दयानन्द—जीवन चरित्र —पृष्ठ २४४ १) ५० पैसे

सिद्धान्त : जीवन : श्रद्धांजलियां दर्जनों चित्र, ४ रंग में छपा आकर्षक आवरण १००) सैकड़ा। सजिल्द १५०) सैकड़ा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

३६—**विश्व को आर्य समाज का सन्देश** १५) सैकड़ा
३७—क्या वेदों में मांस भक्षण है ? ५०) सैकड़ा
३८—ऋषि दयानन्द ने कहा था…… ३०) सैकड़ा
३९—**अध्यात्म ज्योति**—४०० मंत्रों का संग्रह अर्थ सहित २)

१० रुपये सैकड़ा के उपयोगी प्रचार ट्रैक्ट

४०—आर्यसमाज क्या मानता है ? —मदनमोहन विद्यासागर
४१—विश्व को वेद का सन्देश —भारतेन्द्र नाथ
४२—महर्षि दयानन्द की विशेषतायें —महात्मा नारायण स्वामी
४३—आर्यसमाज की विचारधारा —गंगाप्रसाद उपाध्याय
४४—आर्यसमाज की मान्यताएं —पं० रामचन्द्र देहलवी
४५—निमन्त्रण आर्यसमाज का —पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय
४६—आर्यसमाज के दस नियम —रघुनाथ प्रसाद पाठक
४७—आर्य कौन ? —पं० हरिशरण
४८—मूर्ति पूजा की हानियां —महर्षि दयानन्द सरस्वती

ईसाई सम्बन्धी साहित्य

१—ईसाई पादरी उत्तर दें —स्वामी श्रद्धानन्द ३) सैकड़ा
२—ज्ञान विज्ञान का शत्रु ईसाई मत —ओमप्रकाश त्यागी १०) सैकड़ा
३—पोप की सेना का भारत पर हमला —भारतेन्द्र नाथ १०) सैकड़ा
४—ईसाइयों की प्रचार प्रणाली —जगत्कुमार १०) सैकड़ा
५—पादरियों की चुनौती —स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती १०) सैकड़ा
६—बाइबल की चुनौती —ओमप्रकाश त्यागी १५) सैकड़ा
७—ईसाइयत की वास्तविकता —शांतिप्रकाश महोपदेशक १०) सैकड़ा
८—बाइबल कसौटी पर —चार्ल्स स्मिर्थ १५) सैकड़ा
९—Challenge to the christian faith —स्वामी श्रद्धानन्द ५) सैकड़ा
१०—ईसाई पादरियों से ३६ प्रश्न ३) सैकड़ा

जन-ज्ञान (मासिक)

हिन्दी व अंग्रेजी में अलग-अलग
वार्षिक मूल्य १२)। आजीवन २०१)
नमूना पत्र लिख बिना मूल्य मगाएं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रियायती रेटों पर : आकर्षक चित्र

अनेक साइजों में

घर-घर में ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज के महापुरुषों के चित्र पहुंचाने की दृष्टि से हमने यह चित्र

लागत से अत्यन्त कम मूल्य पर देने का निश्चय किया है—

अब आप का कर्त्तव्य है कि अधिक से अधिक मंगाकर

इनका प्रचार करें—

—१५×२२ इंच का १० नेताओं का चित्र दोनों ओर पत्ती लगा हुआ—२५) सैकड़ा

१९७४ की डायरी

२०० पृष्ठों—में संध्या हवन—प्रार्थना मंत्रों सहित। सजिल्द १५० रुपये सैकड़ा सादी—१०० रु० सैकड़ा

मंगाइये—और घर-घर में पहुंचाइए—

—सम्पादक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

महर्षि दयानन्द के दिव्य स्वप्नों की पूर्ति के लिए
धरती पर वैदिक विचारधारा का साम्राज्य
स्थापित करने के लिए

आप प्रति वर्ष
अधिक से अधिक धन देने के
पवित्र संकल्प के साथ
आज ही

'दयानन्द-संस्थान'

के सदस्य बनिये

[पंजीकृत ट्रस्ट]

१००१)	प्रति वर्ष	देकर	"संरक्षक-सदस्य"
५०१)	"	"	"पोषक-सदस्य"
२५१)	"	"	"प्रेरक-सदस्य"
१०१)	"	"	"संचालक-सदस्य"
५१)	"	"	"दाता-सदस्य"
२५)	"	"	"सहायक-सदस्य"
११)	"	"	"प्रचारक-सदस्य"

आप का सहयोग ही हमारी शक्ति है।

विनीत— अध्यक्ष
दयानन्द संस्थान,
नई दिल्ली-५

दूरभाष : ५६६६३९

संस्थान वैदिक धर्म प्रचार के लिए हिन्दी और अंग्रजी में अलग-अलग **जन-ज्ञान (मासिक-पत्र)** प्रकाशित करता है।
जिसका नमूना पत्र लिखकर आप बिना मूल्य मंगा सकते हैं।
वार्षिक शुल्क १२) प्रबन्ध—जन-ज्ञान (मासिक) नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्य समाज स्थापना शताब्दी की सफलता के लिए

५ लाख रु० की आवश्यकता

संसार को वेद मय बनाने के लिए—
हर घर आंगन तक ऋषि संदेश पहुँचाने के लिए

ऋषि भक्त

५ लाख रुपए का प्रबन्ध करें

स्थापना शताब्दी रचनात्मक रूप से
जो मनाना चाहें वे
अधिक से अधिक
आहुति भेजें

अध्यक्ष—
दयानन्द-संस्थान [पंजीकृत न्यास]
नई दिल्ली-५ [भारत]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अधिक से अधिक सत्यार्थप्रकाश वितरण कर महर्षि का संदेश फैलाइए ।

अपनी

आवश्यकताओं

वर-वधू

नौकरी आदि

के लिये

जनज्ञान

में

विज्ञापन दीजिए

———

धन भेजते समय अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें । वी० पी० न मंगाएं । पत्र मिलते ही धन भेज दें । —सम्पादक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

संकल्प बल

विचार, ध्यान, चिन्ता, भवालोचन, विमर्श, भावना, मनोव्यापार, मनोरथ, चित्तचेष्टा, मन, अभिप्राय, कल्पना, मनोवृत्ति ये सब संकल्प के पर्याय वाचक शब्द हैं और अपने-अपने स्थान पर संकल्प ही के लिए प्रयुक्त होते हैं। संकल्प के सम्बन्ध में जितने भी वाद देशी-विदेशी विद्वानों के लेखों में पाये जाते हैं उनमें से कुछेक का हम पहले वर्णन करेंगे।

कामस्तदग्रे संवर्तताधि मनसो देवः प्रथम यदासीत् ।।

(ऋग्० १०।१२९।४)

ऋग्वेद में हम एक जगह पढ़ते हैं—"प्रारम्भ में मन का वीर्य बढ़ाने वाला काम सब से प्रथम उत्पन्न हुआ।" इसी प्रकार की बातें हमें अथर्ववेद में भी एक जगह अंकित मिलती हैं—"काम संकल्प सबसे पहले प्रकट हुआ"।

कामो जज्ञे थमः ।। (अथर्व० ९।२।१९)

अथर्ववेद में और भी कुछ शिक्षाएं मन के सम्बन्ध में अंकित मिलती हैं। उनका भी हम यहाँ उल्लेख करते हैं—"संकल्प में तेजस्विता होती है और वह मनुष्य की भवितव्यता का स्वामी होता है।"

कामः उग्रः ईशानः ।। (अथर्व० ९।२।३)

फिर एक दूसरी जगह लिखा है—"संकल्प के द्वारा मैं तुझे ऊपर उठाता हूं।"

कामं स्तुत्वोदहं भिदेयम् ।। (अथर्व० ९।२।२)

फिर एक दूसरी जगह और लिखा है—"शत्रुनाशक और बलवान् संकल्प को मैं यज्ञ से शिक्षित करता हूं।"

सपत्नहनमृषभं कामं हविषा शिक्षामि (अथर्व० ९।२।१)

यज्ञ के लिए जो मंत्र बोले जाते हैं उन सबके अन्त में 'स्वाहा" और "इदं-न मम" शब्द उच्चारण किये जाते हैं। स्वाहा शब्द के अर्थ (स्व+आ+हा) स्वार्थ का पूर्णतया त्याग है। और 'इदं न मम' के अर्थ 'यह मेरा नहीं है'। इन दोनों शब्दों के प्रयोग का अभिप्राय स्वार्थत्याग है। इससे शिक्षा यह मिलती है कि काम=संकल्प के लिए निष्कामता का आदर्श श्रेयस्कर है। फिर एक जगह प्रार्थना के रूप में संकल्प के अच्छे व बुरे होने का उल्लेख मिलता है। काम=संकल्प के अन्दर जो शुभ और कल्याणकारी भाग है, जिससे समस्त सत्य की सिद्धि होती है, वह मेरे भीतर घुसे और

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जो पाप हैं वह दूर हों।

यास्ते शिवास्तन्वः काम भद्रः याभिः सत्यं भवति यद् वृणीषे।
ताभिष्टमस्माँ अभिसंविशस्वान्यत्र पापीरप वेशया धियः॥
(अथर्व० ६।२।२५)

फिर एक जगह वर्णित है—"तुम्हारा यह जो बहुत ऊँची स्थिति वाला, ब्रह्म ज्ञान से मांजा=पवित्र किया हुआ मन है जिसके द्वारा ही घोर कर्म बनता है, उस मन द्वारा ही हमें शान्ति प्रदान होवे।"

इदं यद् परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्म संशितम्।
येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः॥ (अथर्व० १९।९।४)

यजुर्वेद में भी इस शिक्षा का उल्लेख है। शिव संकल्प के प्रसिद्ध सूक्त में इस प्रकार उपदेश किया हुआ मिलता है—

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

"श्री द्युतिमान् (प्रकाशमय) दूर जाने वाला, ज्योतियों (इन्द्रियों) की ज्योति जाग्रत् अवस्था में दूर जाता है वह स्वप्न वाले का भी उसी प्रकार दूर चला जाता है ऐसा मेरा मन अच्छे संकल्प वाला हो।"

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

"जिस (मन) से कर्मनिष्ठ, मननशील और धीर पुरुष यज्ञ और विज्ञान सम्बन्धी व्यवहारों में कर्म को करते हैं और जो अपूर्वता के साथ प्राणियों के हृदयों में आहत हो रहा है वह मेरा मन अच्छे संकल्प वाला हो।"

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

"जो बुद्धि रूप और स्मृति का साधक तथा धैर्यनिष्ठ, प्रजाओं के अन्तःकरणों में अमरत्व वाला (प्रवाह से नित्य) और ज्योतिर्मय है और जिसके बिना कोई कर्म नहीं किया जा सकता वह मेरा मन अच्छे संकल्प वाला हो।"

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परि गृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥

"जिस अविनाशी मन से भूत, वर्तमान और भविष्यत् सब ओर से, ये सब गृहीत होता है और जिससे सात होता वाला यज्ञ विस्तृत किया जाता है वह मेरा मन अच्छे संकल्प वाला हो।"

यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिंश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"जिस मन में, जैसे रथ-नाभि में अरे लगे होते हैं, उसी तरह ऋचा, साम और यजु छन्दो वाले (चारों वेद) प्रतिष्ठित हैं और जिसमें प्राणियों के चित्त ओत=पिरोये हुए हैं, वह मेरा मन अच्छे संकल्प वाला हो।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

(यजुर्वेद अध्याय ३४। मन्त्र १-६)

'जैसे अच्छा सारथि वेगवान् घोड़ों को रस्सी=लगाम से चलाता है उसी प्रकार यह भी मनुष्यों को इधर उधर ले जाता है। जो ज़रा (बुढ़ापा) रहित अत्यन्त वेगवान् और हृदय में स्थित है वह मेरा मन अच्छे संकल्प वाला हो।"

इन उपर्युक्त वेदमन्त्रों पर विचार करने पर एक वात बहुत साफ़ तौर से प्रकट होती है कि काम=संकल्प सर्वप्रथम प्रकट हुआ है। काम के लिए क्यों कहा जाता है कि वह सर्वप्रथम प्रकट हुआ है? यह वात साफ़ प्रकट कर देने के योग्य है। वेद सृष्टि और प्रलय के चक्र को, दिन रात की तरह प्रवाह से नित्य मानते हैं अर्थात् सृष्टि होती है। उसके वाद प्रलय, फिर सृष्टि, फिर प्रलय—यह चक्र अनादिकाल से चला आता है और अनन्त काल तक इसी प्रकार चला जायेगा।

इस प्रलयवाद को अब कुछेक वैज्ञानिक भी स्वीकार करने लगे हैं। भौतिक इतिहास में नाप सम्बन्धी सिद्धान्त के प्रवर्तक "क्लगटीयस" ने नाप को दो भागों में विभक्त किया है। शक्ति नित्य है यह काम में आया करती है, परन्तु दूसरे प्रकार के नाप (Entrophy) की प्रवृत्ति अधिकतम होने की ओर है। और वह काम में भी नहीं आ सकती। इन्ट्रोपी नाप वह शक्ति है जो भीतर की ओर जाने के लिए प्रवृत्त हुआ करती है। यह शक्ति नाप के रूप में परिवर्तित होकर नाप शून्य मैटर में विभक्त होकर आगे काम में आने के योग्य नहीं रहती + + +यह दूसरा नाप क्रमपूर्वक पहले को कम करता रहता और आप स्वयं बढ़ता रहता है। + + + इस प्रकार विश्व की यान्त्रिक शक्ति प्रतिदिन दूसरे प्रकार के रूप में परिवर्तित होती रहती है और वह आगे के काम में नहीं आ सकती। और न यान्त्रिक शक्ति के रूप में परिवर्तित हो सकती है इस प्रकार बराबर कम होती रहती है।

ऐसा हो जाने पर जो विभिन्नता शीतोष्ण की होती है, जाती रहती है और यान्त्रिक शक्ति ऐसे गति शून्य मैटर में विभिन्न हो जाती है जो काम में आने के योग्य नहीं होता। जब यह दूसरा नाप अधिकतम मात्रा में पहुँच जाता है तब सभी सौन्दर्य जीवन और गति समाप्त हो जाती हैं। और उसी समय इस विश्व का अन्त हो जाता है।

तदेजति (यजु० ४०–५)

इस प्रकार जब जगत् की प्रलय हो जाती है तब फिर जगत् किस प्रकार उत्पन्न हुआ? यह विवेचनीय है। प्रकृति गति शून्य है। बिना गति के जगत् बन नहीं सकता। वेद ने यह बतलाया है कि वह गतिदाता जगत् रचयिता परमेश्वर है जो गतिशून्या (Inertic वाली) जगत् को आन्दोलित करता है। जब परमेश्वर को विभु =सर्व व्यापक कहते हैं तो वह गति किस प्रकार दे सकता है? इस प्रश्न का उत्तर यह दिया जाता है कि जगदुत्पति का विचार जिसे उपनिषदों में ईक्षण अथवा तप

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कहा गया है ईश्वर में आते ही, With proceeds motion के नियमानुसार गति उत्पन्न होकर, प्रकृति में आन्दोलन उत्पन्न करके उसे जगत् बनाने के योग्य बना दिया करती है। इसीलिए कहा गया है कि संकल्प सबसे पहले उत्पन्न हुआ। संकल्पों को उच्च और पवित्र बनाने की शिक्षा वैदिक साहित्य में क्यों दी गई है, इसका उत्तर गोपथ ब्राह्मण में इस प्रकार दिया गया है—

स मनसा ध्यायेद् यद्वा अहं किंचन मनसा धास्यामि तथैव तद्-भविष्यति। तद्ध स्म तथैव भवति। (गोपथ ब्राह्मण)

अर्थात् मनुष्य जैसा संकल्प करता है वैसा बन जाया करता है। यदि संकल्प अच्छे हों तो अच्छा बन जाता है। यदि बुरे हों तो बुरा बन जाता है। इसीलिए संस्कृत साहित्य में जगह-जगह संकल्पों के अच्छा बनाने पर जोर दिया जाता है।

वृहदारण्यकोपनिषद् में एक जगह पर आता है **"काम एव यस्यातन हृदयं लोको मनो ज्योतिः"** अर्थात् मनुष्य का आश्रय स्थान संकल्प ही है। हृदय उसका लोक है। मन उसकी ज्योति है। तथा **"य एवायं काममय पुरुषः"** (बृ० ३।६।११) अर्थात्—इस प्रकार यह पुरुष संकल्पमय ही है।

इसी वृहदारण्यकोनिषद् में एक अन्य स्थान पर आता है—

कामः सङ्कल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा, धृतिरधृति, ह्रीर्धीर्भीरित्येतत् सर्वं मन एव।" (बृ० १।५।३)

अर्थात् कामना, संकल्प, संदेह, श्रद्धा, अश्रद्धा, धैर्य, अधैर्य, लज्जा, बुद्धि, भय, ये सब मन ही हैं।

महानारायण उपनिषद् का वचन है—

कामोऽकार्षीन्नाहं करोमि, कामः करोति, कामः कर्ता, कामः कारयिता। (म. ना. १८।२)

अर्थात् काम ही सबका कर्त्ता है। मैं कर्त्ता नहीं हूँ। काम ही करता व कराता है।

संकल्प शक्ति के सम्बन्ध में एक अन्य वैदिक ग्रन्थ का कहना है—

यं यं कामयते सोऽस्य सङ्कल्पोदय समुतिष्ठति।

(धा० उप० ८।२।१०)

अर्थात् मनुष्य जिस जिस बात की इच्छा करता है वह उसके संकल्प ही से पूरी हो जाती है। मनुस्मृतिकार का कथन है—

सङ्कल्पमूलः कामो वै यज्ञाः सङ्कल्पसम्भवाः।
व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे सङ्कल्पजा स्मृताः॥

अर्थात् जितनी कामनाएँ होती हैं उनका कारण संकल्प ही होता है और समस्त व्रत भी संकल्प ही से उत्पन्न होते हैं। समस्त तप, यम तथा धार्मिक कृत्यों का हेतु भी संकल्प ही है।

एक लोकोक्ति है कि—**"संकल्पं मानसं दैवी चतुर्वर्गप्रदायकम्"** अर्थात् संकल्प रूप मानस दैवी चतुर्वर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के देनेवाली है। इसी प्रकार की एक अन्य लोकोक्ति है—**"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः"** अर्थात् मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण मन ही है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शतपथ ब्राह्मण में कर्म के सम्बन्ध में इस प्रकार की शिक्षा मिलती है—

यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति। यद्वाचा वदति तत्कर्मणा करोति। यत्कर्मणा करोति तदभि सम्पद्यते।

अर्थात् मनुष्य जिस बात का पहले मन के द्वारा संकल्प करता है, उसी को वाणी के द्वारा और उसके उपरान्त कार्य रूप में प्रगट करता है। इससे स्पष्ट है कि समस्त कर्मों का कारण मन का संकल्प ही हुआ करता है।

इसी प्रकार की एक अन्य लोकोक्ति है—**"यो यत् श्रद्धः स एव सः"** (As a man thinketh, so is he) अर्थात् जैसी किसी व्यक्ति की श्रद्धा होती है वैसा ही वह हो जाया करता है।

इस सम्बन्ध में एक मनोरञ्जक कहानी पंचदशीकार विद्यारण्य स्वामी जी ने लिखी है। गुरु ने अपने शिष्य को एक जप करने को कहा था। पूछने पर शिष्य ने उत्तर दिया कि "मेरा मन इस जप में नहीं लगता।" वास्तव में शिष्य का मन अपनी भैंस की ओर चला जाया करता था। तब उसे बतलाया गया कि वह यह जाप करे कि "यह भैंस ही ब्रह्म है।" उसके बाद फिर गुरु ने कहा कि यह जपो कि "मैं भैंस हूं।" कुछ काल के उपरान्त जब गुरु ने उसे बुलाया तो शिष्य ने उत्तर दिया कि गुफा का द्वार तो छोटा सा है और मेरे सिर पर लम्बे-लम्बे सींग हैं। मैं इसमें से किस प्रकार निकल सकता हूं। शिष्य ने जब अपने भैंस होने का जप किया तो वह न केवल यह समझने लगा कि मैं भैंस हूं पर उसे विश्वास हो गया कि उसके सिर पर सींग भी हैं।

इस कहानी से यह स्पष्ट हो जाता है कि विद्यारण्य ने जब इस कहानी को गढ़ा था तब उसे यह विश्वास था कि मनुष्य जैसा विचारता है उसके अनुकूल हो जाया करता है। इससे यह बात साफ हो जाती है कि न केवल प्राचीन वैदिक साहित्य में बल्कि अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में भी इस बात का समर्थन मौजूद है कि मनुष्य, अपने संकल्प के अनुकूल ही बन जाया करता है।

जब हम पश्चिमी साहित्य पर दृष्टि डालते हैं तो उसमें भी इस शिक्षा का वैसा ही समर्थन मिलता है जैसा संस्कृत साहित्य में पाया जाता है। उदाहरण के लिए हम यहां अमेरिका के दो विद्वानों का उल्लेख करते हैं। मार्डन (Marden) अमेरिका के उन उत्कृष्ट लेखकों में से एक हैं जिन्होंने आत्मवाद के महत्त्व को समझा है। मार्डन का विश्वास है कि मनुष्य अपने विचारों के नया कर लेने पर अपने शरीर को नया कर सकता है[१]। उसने एक-दूसरे स्थान पर लिखा है—Man can change his character by changing his thought.

अर्थात् मनुष्य विचार बदल लेने से अपने चरित्र को बदल सकता है। मार्डन के अनुसार मनुष्य अपने विचारों के अनुरूप ही जीवन में सुखी अथवा दुःखी हो सकता है। उसका कहना है—

Poverty itself is not so bad as the poverty thought.

अर्थात् अकिंचनत्व स्वयं इतना बुरा नहीं है जितना मानसिक अकिंचनत्व।

---

१. A man can renew his body by renewing his thought. (Marden)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

फिर उसने एक जगह लिखा है कि अपना भाग्य-निर्माण मनुष्य स्वयं अपने संकल्पों द्वारा कर सकता है, इस सम्बन्ध में मार्डन ने कहा है—

Control your thoughts and you control your destiny.

अर्थात् तुम अपने संकल्प का नियंत्रण करके अपनी भवितव्यता को नियंत्रित कर सकते हो। अन्त में उसका विश्वास है कि विचार रूपी कच्चे माल से ही सब-कुछ बनता है।[1] Every Man a King; Getting on; Peace, Power and Plent; Pushing to the front; तथा An Iron will आदि ग्रंथों में मार्डन के इन विचारों का उल्लेख मिलता है।

एक अन्य युरोपियन विद्वान् का कहना है—"हम अपना भविष्य अपने विचारों की शृंखला से बनाते हैं, इस बात को जाने बिना कि वह अच्छा बन रहा है या बुरा समस्त ब्रह्माण्ड इसी प्रकार से बना है। विचार, भाग्य का दूसरा नाम है। तुम्हें अपना भवितव्य निश्चय करके प्रतीक्षा करनी चाहिए क्योंकि प्रेम से प्रेम और घृणा से घृणा उत्पन्न हुआ करते हैं।"[2]

अपने राजयोग नामक ग्रन्थ में स्वामी विवेकानन्द जी ने इसी प्रकार के भावों को प्रकट किया है—

Every bit of hated that goes out of the heart of man comes back to him in full force; nothing can stop it.

अर्थात् मनुष्य के हृदय से निकला हुआ प्रत्येक घृणा सूचक भाव बल पूर्वक उसी के पास लौट आता है। कोई शक्ति उसे रोक नहीं सकती।

बैनेट नामक प्रसिद्ध अमेरिकन विचारक ने अपने एक ग्रंथ Old Age; Its Causes and Prevention में एक मनोरंजक प्रश्न उठाया है कि आदमी बूढ़ा क्यों होता है। वह कहता है कि जब मनुष्य का शरीर बनाने वाले प्राकृतिक कण (Cells) टूट-फूट कर दो वर्ष में सब नये हो जाते हैं तो फिर आदमी को बूढ़ा क्यों होना चाहिए?

इस प्रश्न का जो उत्तर बैनेट ने दिया है उसे भली भाँति समझने के लिए उसका जीवन वृत्तान्त जानना आवश्यक है। उसने अपने जीवन के ५० वर्ष बड़ी असावधानी से, स्वास्थ्य रक्षा की परवाह न करते हुए, व्यतीत किये थे। इस अवस्था का उसका फ़ोटो जो उसके ग्रन्थ में दिया गया है किसी ७० वर्ष के बूढ़े आदमी का सा फ़ोटो मालूम होता है। बाल सफेद, माथे में शिकन और गले में झुर्रियाँ पड़ी हुई हैं

---

(1) Thought is the stuff out of which things are made. (Marden)

(2) We build our future thought by thought,
Or good or bad and know it not,
And so the Universe is wrought.
Thought is another name of fate,
Choose then your destiny and wait,
For love brings love and hate brings hate.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

और तमाम शरीर की त्वचा ने मांस को छोड़ रक्खा है। ५० वर्ष की आयु के बाद उसने अपना स्वास्थ्य सुधार प्रारम्भ किया। दो बातें थी जिन्हें उसने अपनाया। पहला समस्त शरीर के हल्के व्यायाम जिन्हें आदमी लेटे लेटे ही कर सके तथा दूसरे अपने विचारों को उपयोगी बनाना। इन दोनों बातों का अभ्यास करते हुए उसने २० वर्ष व्यतीत किये। ७० वर्ष की अवस्था के उसके चित्र से प्रतीत होता है मानो किसी तीस-पैंतीस वर्ष के जवान का है। अब उसके बुढ़ापे के सारे चिह्न शरीर से जाते रहे थे।

वैनेट ने जो प्रश्न उठाया है उसके उत्तर में वह कहता है मनुष्य बूढ़ा अपने विचारों से होता है। जितना ही वह बुढ़ापे की बात सोचता है उतना ही वह बूढ़ा होता जाता है।

उसने अपनी पुस्तक (Old age, its cause and prevention) बुढ़ापा उसके कारण व उसकी रोक में एक बड़ा शिक्षाप्रद उदाहरण फ्रांस की एक लेडी का दिया है। उदाहरण में वर्णित है कि फ्रांस की एक लड़की ने १९ वर्ष की आयु में अपना विवाह सम्बन्ध वहीं के नवयुवक के साथ करना निश्चय किया। युवक ने अपने पास धन की कमी देख लड़की से कहा कि विवाह तो निश्चय हो ही गया है परन्तु उसे क्रियात्मक रूप देने से पहले यह आवश्यक है कि मैं कुछ धन संग्रह कर लूं। लड़की समझदार थी उसने रज़ामन्दी दे दी। इस नवयुवक का यह विचार भारतीय शिक्षा और मर्यादा के अनुकूल था। श्री पिंगलाचार्य ने अपने ग्रन्थ पिंगल के पहले ही सूत्र में लिखा है, **"धीः श्रीः स्त्रीम्"** अर्थात् नवयुवक का पहला कर्तव्य अपने आपको विद्वान् व बुद्धिमान् बनाना है फिर उसे दूसरे कर्तव्य की पूर्ति के लिए किसी व्यवसाय में लग कर धनोपार्जन करना चाहिए। इसके बाद विवाह करना चाहिए। तब वह प्रसन्नता देने वाला होता है अस्तु। वह युवक धन पैदा करने के लिए अमरीका चला गया। अमरीका में कोई ६ घण्टे मज़दूरी करके २३ या २४ रु० रोज कमा सकता है। उस युवक ने ३ वर्ष प्रयत्न करके पर्याप्त धन पैदा कर लिया। परन्तु किसी झगड़े में पड़कर १५ वर्ष फिर उसे अमरीका रुकना पड़ा। १८ वर्ष के बाद वह फ्रांस में लौटा, तब इन दोनों का विवाह हुआ। परन्तु जिस बात ने वर को आश्चर्य में डाल रक्खा था वह यह थी कि वधू के पूर्ण युवती हो जाने पर भी ३७ वें वर्ष की आयु में उसके चेहरे का आकार प्रकार वैसा ही था जैसा १९ वें वर्ष की आयु में अमरीका जाते समय वर छोड़ गया था। पूछने पर वधू ने प्रकट किया "मैंने निश्चय किया था कि १९वें वर्ष में विवाह करूँगी। विवाह निश्चय तो हो गया पर हो नहीं सका। तब उसने दूसरा निश्चय किया कि विवाह जब भी होगा मैं उस समय तक अपने इस चेहरे के आकार प्रकार को वैसा ही बनाये रक्खूंगी जैसा १९ वें वर्ष की आयु में था।" इस दूसरे निश्चय की पूर्ति के लिए वधू ने अपने घर के एक कमरे में मनुष्य के बराबर (आदम क़द) का एक आइना तैयार कराया। आइने के फिट हो जाने पर उसने अपनी सूरत देख कर अपने ज़हन में कर ली। अब वह जब इस कमरे से गुज़रा करती थी और दिन में तीन चार बार गुज़रना पड़ता था तो एक मिनट के लिए आइने के सामने खड़ी होकर अपनी सूरत देख कर सोच लिया करती थी कि उसमें कोई अन्तर नहीं पड़ा है, यह अमल उसका निरन्तर १८ वर्ष तक जारी रहा। उसका प्रभाव यह हुआ कि उसकी शक्ल सूरत में कोई अन्तर नहीं पड़ने पाया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बैनेट के इस ग्रन्थ से प्रकट होता है कि किस प्रकार मनुष्य के विचार उसके चेहरे पर अपना प्रभाव डाला करते हैं। अमरीकन डाक्टर कैलोग ने भी इसका समर्थन किया है। उसने एक जगह लिखा है, "मनुष्य के विचारों का चेहरे की खूबसूरती पर प्रभाव पड़ा करता है। अच्छे विचार और चरित्र वाले का चेहरा खूबसूरत होता है।" जर्मन के प्रसिद्ध लेखक 'मिनकल' का कथन है कि "चिन्ताओं, सन्देहों और अनिष्ट विचारों से चेहरे का रंग बिगड़ जाता है।" स्पष्ट है कि निराशा और असफलताओं का प्रभाव चेहरे पर पड़ा करता है और ऐसे प्रभावों की तह पर तह जम जाने से चेहरे की हालत बदल जाया करती है, और वह कुम्हलाया हुआ पीला पड़ जाया करता है। ग्लेड स्टोन ने भी इसका समर्थन करते हुए लिखा है, "अच्छी शक्ल किसी व्यक्ति की हो या किसी जाति की, यह कोई इत्तफाकिया बात नहीं होती किन्तु वर्षों व सैंकड़ों वर्षों की घटनाओं का फल हुआ करती है।"

मन की शक्ति प्रकट करते हुए प्रोफेसर 'ह्वाइट हेड' (White head) ने एक जगह लिखा है कि 'मजदूरों के एक भी पत्थर उठाने से पहले, हमारा मन महलों को बना लेता है। और वो सीधा होकर गिरने से पहले हमारा मन उसे गिरा भी दिया करता है।

इवटसन कहता है कि "विचारों की गहराई से, गणित के विचार से यह बताया जा सकता है कि उसका जनता पर क्या प्रभाव पड़ सकता है।" शाश्नुतारा ने अपने एक ग्रन्थ के प्रैक्टीकल योग (Practical yoga) में लिखा है कि "नये विचार और प्रस्ताव (suggestion) जो उसी बाद पर आश्रित हैं, अधिकतर सम्भावना यह है कि उनका मुख्य आधार योग है।"

इसी प्रकार की बात डिमस्डेल (Dimsdail) ने अपने ग्रन्थ योग मेथड (yoga method) में लिखी है। वह कहता है कि "यह केवल पुराने और अत्यन्त पुराने विचारों का पुनरुत्थान मात्र है। नवीन विचारों का नयापन केवल नाम मात्र है।"

मिलटन ने लिखा है कि "The mind in its own place and in itself can make a heaven of hell, a hell of heaven," अर्थात् स्वर्ग को नर्क और नर्क को स्वर्ग बनाना केवल मन का काम है।

मनुष्य के संकल्प यदि वे बुरे हैं तो वे उसे रोगी भी बना दिया करते हैं। कैसे विचारों से मनुष्य को किस प्रकार के रोग हो जाया करते हैं, उनमें से कुछेक का विवरण यहाँ दिया जाता है।

(क) अत्यन्त स्वार्थ और ईर्ष्या से घृणा बढ़ जाती है और उससे यकृत् और तिल्ली के रोग हो जाते हैं।

(ख) क्रोध और घृणा से कुछेक गुरदे से सम्बन्धित रोग हो जाते हैं।

(ग) डाह, भय और उदासीनता से हृदय सम्बन्धित अनेक रोग हो जाया करते हैं। उन रोगों से हृदय जब अत्यन्त निर्बल हो जाया करता है तब साधारण क्लेश पहुँचने से भी उसकी गति रुक जाती है और मनुष्य को मौत के घाट उतरना पड़ता है।

(घ) मानसिक चिन्ताओं (Mental anxiety) से वक्ष विस्फोट (Cases of cancer of breast) होते हैं।

(च) चिन्ता, क्रोध और हृदय को धक्का लगने से पांडु रोग (Jaundice) हो जाया करता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(छ) उद्वेग से त्वचा के कार्य प्रभावित होते हैं।

(ज) विषय-वासना के विचारों से प्रमेह आदि मूत्र रोग सम्बन्धित रोग होते हैं।

(झ) दूषित संकल्पों (विपरीत ज्ञान) आदि से मृत्यु भी हो जाती है।

इस सम्बन्ध में कुत्ते और शीशमहल की घटना प्रसिद्ध है—एक दौलतमन्द ने एक मकान ऐसा बनवाया जिसके चारों ओर की दीवारें आइनों की थीं। एक दिन वह इस मकान में गया। उसका पालतू कुत्ता भी उसके साथ हो लिया। वह मकान से निकला और कुत्ते का ख्याल किये बिना उसने मकान बन्द कर दिया। इस प्रकार कुत्ता उसके भीतर बन्द हो गया। कुत्ते ने जब मकान से निकलने की चेष्टा की और निकलने का रास्ता ढूंढने लगा तो दीवारों के शीशे के होने से उसे चारों ओर कुत्ते ही कुत्ते दिखाई पड़े। और इन बहुसंख्यक अजनबी कुत्तों से वह इतना भयभीत हुआ कि उसके हृदय की गति रुकी और वह वहीं मर गया। इससे स्पष्ट प्रकट है कि कुत्ते की मृत्यु का कारण उसका मिथ्या ज्ञान ही था।

मनुष्य अन्यों की नाप तोल अपने विचारों के पैमाने ही से किया करता है। यदि उसके विचार अच्छे होते हैं तो वह दूसरों को भी अच्छा ही समझा करता है, यदि बुरे होते हैं तो अन्यों को भी बुरा समझने लग जाता है। एक मनुष्य ने एकान्त सेवन के लिए जंगल में एक मकान बनाया। कुछ समय तक रहने के बाद उसे छोड़ दिया। मकान खाली पड़ा था, उधर से गुजरने वाले चोरों के एक जत्थे ने उस मकान को अपने लिए उपयोगी समझा। कुछेक अनाचारियों ने अपनी अनाचार भावना की पूर्ति करने को उसे उपयुक्त स्थान समझा। एक ईश्वर भक्त ने ईश्वर चिन्तन के लिए उसे अच्छी जगह समझा। प्रत्येक ने अपने अपने विचारानुकूल उसे अपने लिए उपयुक्त समझा। इसी प्रकार जब मनुष्य अपने दूषित विचारों के कारण अन्यों को बुरी दृष्टि से देखता है तो दूसरे भी कार्य और प्रतिकार्य के नियमानुसार उसे वैसी ही दृष्टि से देखने लगते हैं। फल उसका समाज में अशान्तिकारक होता है। अब तुमने देख लिया कि बुरे संकल्प देश के लिए भी अहितकर होते हैं।

एक दूसरा दृष्टिकोण भी है उससे प्रकट होता है कि विचारों का समाज पर कितना प्रभाव पड़ा करता है। मन में जब कोई संकल्प उत्पन्न होता है तो वह नष्ट नहीं हो जाता अपितु शरीर से बाहर आकर आसपास के वायुमंडल पर छाप लगा देता है। इस संकल्प का यदि किसी मनुष्य व जीव जन्तु से सम्बन्ध हो तो वह संकल्प तदाकार हो जाता है। पेरिस के डाक्टर बेराडुक ने इनके फ़ोटो लिए हैं। उनमें से कुछेक का हम यहां उल्लेख करते हैं—

(१) एक लड़की अपने पालतू मृत पक्षी का विचार कर रही थी। जब उस का फ़ोटो लिया गया तो पिंजड़े में उस पक्षी का चित्र खिंच गया।

(२) एक स्त्री अपने मरे बच्चे का चिन्तन कर रही थी। फ़ोटो लेने पर प्लेट पर मरे बच्चे का चित्र आ गया।

(३) एक सिपाही अपने गरुड़ पक्षी का विचार कर रहा था। फ़ोटो लेने पर वैसा ही चित्र पक्षी का खिंच गया।

अस्तु किन्हीं लोगों को इस फ़ोटो लेने की परिक्रिया पर सन्देह होता है परन्तु सन्देह की बात कुछ भी नहीं है। विचार शब्दमय होते हैं और शब्द प्राकृतिक होते

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हैं। पंच तन्मात्राओं में, जिनमें सूक्ष्म भूतों का विवरण दिया गया है, सबसे पहली तन्मात्रा शब्द ही है। इसलिए प्राकृतिक विचार के फ़ोटो लिए जाने में न कोई आश्चर्य की बात है न कोई अस्वाभाविक परिक्रिया है। समाज पर इन छापों में आये हुए संकल्पों का किस प्रकार प्रभाव पड़ा करता है? इस सम्बन्ध में भी थोड़ा विचार कर लेना आवश्यक है। अच्छे या बुरे संकल्पों की बार-बार वायुमण्डल पर छाप लगने से, वह वायुमण्डल उससे प्रभावित हो जाता है।

उस वायुमण्डल के सम्पर्क में आने से, आने वाले पर अच्छा या बुरा प्रभाव, संकल्प में प्रकारानुसार पड़ जाया करता है। एक दो उदाहरणों से यह बात भली भांति समझी जा सकेगी। एक आर्य मन्दिर है, इसमें जो कोई भी आता है अच्छे विचार लेकर ही आता है। कोई सन्ध्या, कोई हवन, कोई स्वाध्याय करने, कोई उपदेश या कथा सुनने ही आया करता है। फल इसका यह होता है कि यहां का वायुमण्डल बार-बार अच्छी छापों के लगे रहने से प्रभावित रहा करता है। यदि कोई ऐसा व्यक्ति मन्दिर में आ जावे, जिसके हृदय में इस मन्दिर के लिए पवित्रता के भाव न हों तो भी वहाँ के वायुमंडल का उस पर यह प्रभाव होगा कि थोड़ी देर के लिए उसके भीतर भी पवित्रता की भावना पैदा हो जायेगी। इसके विपरीत यदि कोई वेश्या-गृह में जावे जहां लोग सदैव दूषित और अनाचार की भावना लेकर जाया करते हैं और जहां का वायुमण्डल इसी हेतु से दूषित बना हुआ है तो जाने वाले में चाहे वह कितना शुद्धाचारी हो थोड़ी देर के लिए वहां के दूषित वायुमण्डल के प्रभाव से, दूषित भावना पैदा हो ही जावेगी। अस्तु हमने देख लिया कि मनुष्य के बुरे संकल्प किस प्रकार दूसरे व्यक्तियों पर बुरा प्रभाव डाला करते हैं। इसीलिए शिव संकल्प रखने की शिक्षा मनुष्यों को वेदों ने दी है।

इन विचारों के रूप और आकार पर भी थोड़ा विचार करना अच्छा होगा।

(१) प्रेमतम संकल्पों का रंग गुलाबी और आकार सुन्दर फूलों का बना करता है।

(२) ईश्वर की भक्ति के संकल्प आसमानी रंग रखते हैं और गुंबदाकार होते हैं।

(३) क्रोध व हिंसामय संकल्प काला रंग रखते हैं। और छुरी और बरछी के आकार वाले हुआ करते हैं।

(४) विषय और कामोद्वेग के संकल्प लाल रंग वाले हुआ करते हैं।

(५) तर्क वितर्क के विचार पीला रंग रक्खा करते हैं।

(६) स्वार्थ-परायणता के संकल्प हरे रंग वाले हुआ करते हैं।

ये एक प्रकार के अनुसंधान का फल है। १८९९ ई० में न्यूटन ने रंगों की विद्या प्रकट की थी। उसने रंग चिकित्सा-पद्धति को प्रकट किया, रंग का रोगी होने पर मनुष्यों पर क्या प्रभाव पड़ा करता है, इसका इस प्रकार उल्लेख किया है :—

(१) पीला रंग रोशनी और गर्मी पैदा करता है।

(२) लाल रंग गरमी तथा मन में बेचैनी पैदा करता है।

(३) नीला रंग शान्तिद्योतक है। इससे मस्तिष्क और हृदय में ठंडक पहुँचा करती है।

(४) हरा रंग आंखों को ताजगी देता है।

(५) काला रंग दुःखवर्धक समझा जाता है।

अच्छे संकल्प मानसिक शक्ति बढ़ाने वाले हुआ करते हैं। मानसिक शक्ति के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बढ़ जाने से, मनुष्यों का चेहरा प्रभावोत्पादक हो जाता है और आंखों में तेजस्विता आ जाया करती हैं। दूसरे उससे निर्बल प्राणी, उसकी इन शक्तियों से प्रभावित हो जाया करते हैं। मैंस्मरेज़म और हिपनेटिजम=संमोहनीय विद्या, इन्हीं शक्तियों की सन्तति हैं। दो एक उदाहरणों से इस विद्या का अच्छा ज्ञान हो जायगा :—

(१) एक भूखे सांप ने वृक्ष पर बैठी छोटी चिड़ियाओं को देखा। आंख मिलते ही चिड़िया मूछित (Magnetised) होकर सांप के सामने गिर पड़ी। उसने उसे खाकर अपनी भूख शान्त कर ली।

अमरीका के डाक्टर एण्ड्रियो जैक्टसन डैवीस (Dr. Andreo Jacttson daves) ने इस शक्ति का बलपूर्वक समर्थन किया है।

(२) ज्यों ही बिल्ली की आंख कबूतर से मिलती है तो कबूतर मूछित हो कर बिल्ली का ग्रास बन जाता है।

भेड़िया जब वृक्ष के नीचे से ही वन्दरों को देखता है तो आंख मिलते ही वे मूछित हो जाते हैं, और उनमें से एक को भेड़िया उठा ले जाता है।

गीता में एक स्थान पर आता है :—

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृति भ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

(गीता २।६२, ६३)

अर्थात् बुरे विषयों का चिन्तन करने से वे साथी बनकर काम को पैदा करते हैं। काम से क्रोध, क्रोध से अविवेक, अविवेक से स्मृति में गड़बड़ी, स्मृति में गड़बड़ी होने से बुद्धि का नाश हो जाता है। और बुद्धि के नष्ट होने से मनुष्य का नाश हो जाता है। गीता के इस वाक्य में प्रदर्शित किया गया है कि बुरे संकल्प किस प्रकार मनुष्य का नाश कर दिया करते हैं।

अथर्ववेद की शिक्षा मन को दृढ़ बनाने के लिए है।

अश्मवर्म मे ऽसि यो मा प्राच्या दिशो ऽघायुरभिदासात्। एतत्स ऋच्छात् ॥१॥ अश्मवर्म मे ऽसि यो मा दक्षिणाया दिशो० ॥२॥ अश्मवर्म मे ऽसि यो मा प्रतीच्या दिशो० ॥३॥ अश्मवर्म मे ऽसि यो मोदीच्या दिशो० ॥४॥ अश्मवर्म मे सि यो मा ध्रुवाया दिशो० ॥५॥ अश्मवर्म मे ऽसि यो मोर्ध्वाया दिशो० ॥६॥ अश्मवर्म मे ऽसि यो मा दिशामन्तर्देशेभ्यो ऽघायुरभिदासात्। एतत्स ऋच्छात् ॥७॥

इन मंत्रों का अभिप्राय यह है :—

(हे मनः) तू मेरा पत्थर का सा दृढ़ कवच है। जो पापाचारी मुझ पर पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, नीची, ऊपरी और अन्तर दिशाओं से (आक्रमण करके) विनाश करना चाहे वह (तेरा) यह प्रहार पाकर पछाड़ जावें।

इस प्रकार आप सब को अपने शुभ संकल्प बनाने का हर समय यत्न करना चाहिए।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जीवनान्त की शिक्षा

छान्दोग्योपनिषद् प्रपाठक ३ के १७ वें खंड में एक कथा इस प्रकार है कि घोर आङ्गिरस ऋषि ने देवकी पुत्र कृष्ण को शिक्षा दी कि जब मनुष्य का अन्त समय आवे और वह इस दुनिया से कूच करने वाला हो तो उसे इन तीन वाक्यों का उच्चारण करना चाहिए—

(१) **त्वम् अक्षितमसि,** अर्थात् हे ईश्वर आप अविनश्वर हैं, (२) **त्वम् अच्युतमसि,** आप परिवर्तन रहित एक रहने वाले हैं, (३) **त्वं प्राणसंशितमसि,** आप सर्व जीवनप्रद और सूक्ष्मतम हैं। उपनिषत्कार का कहना है कि कृष्ण इस शिक्षा को पाकर अपिपास हो गए अर्थात् उन्हें इस शिक्षा के पश्चात् और किसी शिक्षा की जरूरत बाकी नहीं रही। प्रश्न यह है कि ऋषि ने कृष्ण को वापस समय के एक कर्त्तव्य का उपदेश किया था। उन्होंने क्यों समझ लिया कि अब और किसी शिक्षा की जरूरत नहीं रही। इस प्रश्न के उत्तर के लिए हमें एक वेद मन्त्र पर दृष्टि डालनी पड़ती है।

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्त ँ शरीरम्।
ओ३म क्रतो स्मर। क्लिबे स्मर। कृत ँ स्मर॥ यजु० ४०।१५

मन्त्रार्थ इस प्रकार हैं "(वायुः अनिलम्, अमृतम्) शरीरों में आने जाने वाला जीव अमर है। परन्तु, (इदं शरीरं भस्मान्तम्) यह शरीर केवल भस्म पर्यन्त है (जब इन दोनों के वियोग का समय आवे तो) हे कर्मण्य जीव (ओ३म् का) स्मरण कर, निर्बलता दूर करने के लिए (ओ३म् का) स्मरण कर। अपने किये हुए का स्मरण कर।" इस मन्त्र में दो बातें अन्त समय में करने को बतलाई गई हैं—(१) ओ३म् का स्मरण करना (२) अपने किये हुए कर्मों का स्मरण करना।

मनुष्य का जीवन दो भागों में विभक्त होता है—पहला भाग वहां तक रहता है जहां तक मनुष्य मृत्यु शय्या पर नहीं आता। जीवन के इस भाग में मनुष्य को कर्म की स्वतन्त्रता रहती है। वह उल्टा, सीधा जिस प्रकार का भी चाहे कर्म कर सकता है परन्तु जीवन के दूसरे भाग में यह स्वतन्त्रता बाकी नहीं रहती। मनुष्य अपने जीवन के पहले भाग में जिस प्रकार के भी कर्म करता है, जीवन का दूसरा भाग उस प्रकार का चित्र खींचकर दुनिया के सामने रख दिया करता है। यदि किसी ने पुत्रैषणा=पुत्र, स्त्री, बन्धु बान्धवों के मोह ही में अपना जीवन व्यतीत किया है तो अन्त में उसे इन्हीं का स्मरण करते हुए इस दुनिया से जाना पड़ेगा। यदि किसी ने वित्तैषणा अर्थात् धन के लोभ और मोह में जीवन व्यतीत किया तो अन्त में इसी धन के लिए

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रोते हुए दुनिया से जाना पड़ेगा। यदि किसी ने लोकैषणा संसार के मान और प्रतिष्ठा प्राप्त करने की इच्छा में अपना जीवन लगाया है तो फिर अन्त में इसी की चिन्ता करते हुए मनुष्य को जाना पड़ेगा।

इस शिक्षा के जान लेने के बाद जो प्रश्न श्री कृष्ण के सम्बन्ध में उत्पन्न हुआ था उसका उत्तर मिल जाता है। कृष्ण जी ने समझ लिया था कि ऋषि ने यद्यपि अन्त के समय के एक कर्तव्य की शिक्षा उन्हें दी थी परन्तु अन्त में वे वाक्य मनुष्य की जबान से कब निकल सकते हैं, जब उसने जीवन के पहले भाग में उनका स्मरण और चिंतन किया हो। इसलिए ऋषि की शिक्षा अन्त के समय की एक शिक्षा नहीं अपितु सारे जीवन का कार्यक्रम था। जब सारे जीवन का कार्यक्रम मालूम हो गया तो फिर और किसी शिक्षा की ज़रूरत क्या बाकी रही ?

यहां तक पहुंचने के बाद अब एक दूसरा प्रश्न है, जो उत्पन्न होता है और उस प्रश्न का आधार यह है कि बहुत-सी शिक्षाएँ ऐसी होती हैं जो केवल वाद के रूप में रह जाती हैं उन पर अमल नहीं होता और बहुत-सी ऐसी हैं जिन पर अमल भी होता है तो प्रश्न यह है कि यह शिक्षा कि 'मनुष्य अपने जीवन के पहले भाग में जो कुछ भी करता है दूसरा और अन्तिम भाग उसका चित्र खींचकर दुनिया के सामने रख दिया करता है" कैसी है ? अर्थात् यह शिक्षा केवल वाद रूप में रह जाने वाली है अथवा इसके अनुकूल दुनिया के लोगों का आचरण भी है। यदि पहली सूरत है तो हमें इसकी परवाह करने की ज़रूरत नहीं, यदि दूसरी सूरत है तो हमें इसकी परवाह करने की जरूरत होगी। इसके निर्णयार्थ हमें कुछ इतिहास के पृष्ठ उलटने चाहिएँ। जब हम ऐतिहासिक दुनिया में दाखिल होते हैं तो हमें कुछेक निर्णायक घटनाओं का उल्लेख मिलता है। जिनका विवरण इस प्रकार है—

पहली घटना—गजनी के राजा महमूद का जीवनोद्देश्य यह था कि बहुत-सा धन गज़नी में जमा कर देवे। उसने इधर-उधर लूटमार करके अपना उद्देश्य प्रायः पूरा कर लिया। उसके जीवन के पहले भाग का काम पूरा हो गया। अब हम महमूद को जीवन के दूसरे भाग में मृत्यु-शय्या पर देखते हैं। उसके सामने संगृहीत धन का ढेर लगा हुआ है वह टकटकी बांधे हुए उसे देख रहा है। हृदय में निराशा की लहरें उठ रही हैं कि हाय मैं इस सब धन को यहीं छोड़े जा रहा हूं। आंखों से टप-टप आंसू गिर रहे हैं। इसी हालत में महमूद अन्तिम श्वास लेता है और दुनिया से कूच कर जाता है।

दूसरी घटना—फ्रांस देश की उस समय की घटना है जिस समय वह छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। उन मांडलिक राज्यों में से एक राज्य का राजा नवां पीटर (Petre the IX) था। उस समय ईसाइयों का बड़ा तीर्थ जेरोशलम उनके अधिकार से निकलकर तुर्कों के अधिकार में चला गया था। ईसाइयों ने उसे स्वतन्त्र करने के लिए युद्ध किये। उन युद्ध करने वालों में एक पीटर भी था परन्तु इसकी सदैव हार होती रही। अब हम पीटर के जीवनान्त में देखते हैं, उसके मुंह से जो अन्तिम शब्द निकलते हैं—जेरोशलम ! जेरोशलम !! जेरोशलम !!! इस अन्तिम शब्द के साथ उसका जीवन-संग्राम समाप्त हो जाता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तीसरी घटना—उदयपुर के महाराणा प्रताप ने उदयपुर के स्वतन्त्र करने के लिए अकबर से अनेक बार युद्ध किये और बड़ी वीरता के साथ युद्ध किया। उन्होंने उदयपुर को स्वतन्त्र कर लिया। महाराणा भी अब जीवन के दूसरे भाग में मृत्यु-शय्या पर हैं। उन्होंने अपने सरदारों से कहा कि मुझे विश्वास दिलाओ कि उदयपुर की स्वतन्त्रता रक्षित रहेगी। विश्वास दिलाते ही उनकी आत्मा शरीर से विदा हो गई।

चौथी घटना—आर्यसमाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द का जीवनोद्देश्य वेदों का प्रचार और ईश्वर-विश्वास का विस्तार करना था। उन्होंने अपने समस्त जीवन को इसी उद्देश्य की पूर्ति में लगाया। अब हम उन्हें भी जीवन के अन्तिम भाग में देखते हैं। पं० गुरुदत्त और अनेक सज्जन उनके अन्तिम दर्शन के लिए विद्यमान थे। उन्होंने पलंग पर बैठकर कुछ प्राणायाम किये और प्राणायाम के पश्चात् कुछेक वेद मन्त्रों का उच्च स्वर से उच्चारण किया। वेद मन्त्रों के उच्चारण करने के साथ ही उनके चेहरे से कुछ मुस्कराहट प्रकट होने लगी। गुरुदत्त के सामने यह समस्या उपस्थित हो गई कि यह मुस्कराहट कैसी? उन्हें फ्रांस के ज्योतिषी और वैज्ञानिक लाप्लास का ध्यान आया कि मौत से भयभीत होकर वह बेसुध हो गया और उसी बेहोशी की हालत में उसकी जबान से ये शब्द निकल पड़े—"Love is greater than thousands of my Mathematics." अर्थात् ईश्वर का प्रेम मेरी सहस्रों गणितों से अच्छा है। लाप्लास नास्तिक था उसे ईश्वर का प्रेम कब याद आया जब मौत ने आकर उसके गले को दबाया। गुरुदत्त भी नास्तिक था परन्तु ऋषि दयानन्द की मुस्कराहट मानो एक विद्युत् थी जिसने उसके हृदय में एकत्रित नास्तिकता के कूड़े और करकट को भस्म करके गुरुदत्त को आस्तिक बना दिया। ऋषि दयानन्द ने उसी मुस्कराहट की हालत में अपने अन्तिम शब्द उच्चारण किये—"प्रभु, आपने अच्छी लीला की, आपकी इच्छा पूर्ण हो।" और उनके उच्चारण करते ही उनकी भी आत्मा शरीर को छोड़कर परलोक गमन कर गई।

उपर्युक्त चार ऐतिहासिक घटनाओं से जो भिन्न-भिन्न समयों की हैं और भिन्न-भिन्न स्थानों से सम्बन्ध रखती हैं यह बात प्रमाणित हो गई कि मनुष्य अपने जीवन के पहले भाग में जो कुछ काम करता है, उसके जीवन का दूसरा भाग वैसा ही चित्र खींच दिया करता है। अथवा यों कहिये कि जीवन का दूसरा भाग पहले भाग के किये कृत्यों का चित्र हुआ करता है। केवल वाद नहीं अपितु नियम (Law) है, इस लिए प्रत्येक स्त्री पुरुष को इसमें होकर गुज़रना पड़ेगा। इस दूसरे भाग को यदि परीक्षा कहें तो भी अनुचित न होगा। यह परीक्षा सबको देनी होगी। यदि अन्त में कोई धन, संतान अथवा मान-मर्यादा के लिए पश्चात्ताप करता और दुःखी होता हुआ दुनिया से जाएगा तो लोग जान लेंगे कि यह परीक्षा में अनुत्तीर्ण होकर जा रहा है। यदि दयानन्द की तरह हँसता हुआ या टालसटाय की भांति प्रसन्न होता हुआ संसार से विदा होगा तो लोग समझेंगे कि यह परीक्षा में उत्तीर्ण होकर जा रहा है। अस्तु; हम अन्त में उन साधनों का कुछ उल्लेख करते हैं, जिन के करने से मनुष्य अपने जीवन के पहले भाग को वैसा ही बना सकता है जैसा बनाने की शिक्षा वेद और उपनिषद् में दी गई है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पहला साधन—शुद्ध अन्न का सेवन है। शुद्ध अन्न ईमानदारी और परिश्रम से कमाए हुए धन को कहते हैं। संस्कृत में एक कहावत है "यथा अन्नं तथा मनः।" अर्थात् जैसा अन्न होता है वैसा ही मन बना करता है। छल कपट, रिश्वत और बेईमानी के अन्न का प्रयोग करके कोई भी व्यक्ति अपने मन को अच्छा नहीं बना सकता।

दूसरा साधन—ईश्वर का प्रेम और ईश्वर-विश्वास है। कुछेक भाई कहा करते हैं और मुझसे भी एक भाई ने जो अनेक डिग्री रखने वाले डाक्टर थे एक बार पेशावर में पूछा था कि हम सब अच्छे काम करें और ईश्वर को न मानें तो क्या इस से कुछ हानि होगी ? मैंने उनसे पूछा कि ईश्वर को न मानकर अच्छे बुरे की परख कैसे होगी ? जो आस्तिक हैं वे तो ईश्वर के गुण कर्म और स्वभावानुसार जितने भी काम हैं उनको अच्छे होने की श्रेणी में रखते हैं और जो उनके विपरीत होते हैं उन्हें बुरा ठहराते हैं। उनके साथ में तो ईश्वर एक कसौटी के रूप में है उस पर कसकर वे अच्छे और बुरे की पहिचान कर लिया करते हैं। मैंने डाक्टर से पूछा कि "आप किस कसौटी से अच्छे और बुरे की परख करेंगे ?" उन्होंने उत्तर दिया कि हम उपयोगितावाद (Utilitarianism) का आश्रय लेंगे ! जिस काम की उपयोगिता होगी उस को अच्छा और अनुपयोगिता वाले को बुरा समझेंगे। मैंने उन्हें कहा कि जान स्टूअर्ट मिल (John Stuat Mill) ने जो इस बात के प्रवर्तक समझे जाते हैं अपने ग्रन्थों में उपयोगिता की व्याख्या करते हुए एक जगह लिखा है कि एक आदमी भूखा है, और दूसरे के पास उसकी जरूरत से अधिक अन्न है परन्तु जब पहला व्यक्ति उससे अन्न मांगता है तो वह देता नहीं तो उपयोगिता क्या है ? मिल ने उत्तर दिया—("Then it is duty to steal." अर्थात् अब पहले व्यक्ति का कर्तव्य है कि चोरी करके अन्न प्राप्त कर ले। मिल ने एक दूसरा उदाहरण एक ट्रैम्वे कम्पनी का दिया है। अमरीका के एक नगर में प्रदर्शिनी होने वाली थी। एक ट्रैम्वे कम्पनी के संचालकों ने उस नगर में ट्रैम्वे चलाने की आज्ञा चाही। उन्हें लैसन्स मिल गया परन्तु ट्रैम्वे चलाने के प्रारंभ करने की तिथि उनके अनुकूल नहीं थी। उन्होंने रिश्वत देकर वह अनुकूलता प्राप्त कर ली। यहां मिल ने रिश्वत देने की उपयोगिता स्वीकार की है। इन उदाहरणों के देते हुए मैंने डाक्टर से पूछा कि यही आपकी कसौटी है जिस पर खोटे माल को कसते हैं और वह उसे खरा बतलाती है ? डाक्टर ने कुछ लज्जित होते हुए उत्तर दिया कि "मैं इस पर फिर विचार करूंगा।" इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को समझ लेना चाहिये कि अच्छे बनने के लिए आस्तिकता अनिवार्य वस्तु है।

तीसरा साधन—सेवा भाव तीसरा साधन है। सेवा से मनुष्य में नम्रता, निरभिमानता और सामाजिक प्रेम आया करता है जिस से मनुष्य-जीवन ऊंचा हुआ करता है। और उसमें समता आया करती है। सेवा भाव से हम अन्यों से अनेक दोष छुड़ा सकते हैं। सेवा मनुष्य को उच्च और लोकप्रिय बनाने का मुख्य साधन है।

जब मनुष्य शुद्ध अन्न का सेवन करता, आस्तिकता के ऊंचे भाव रखता और सेवा की वृत्ति बना लेता है तो इससे उसके जीवन का पहला भाग उत्तम और श्रेष्ठ तथा ईश्वरमय बना करता है। ऐसा जीवन बना लेने से उसके जीवन का दूसरा भाग फिर वैसा ही बन जाता है जैसे बनाने की शिक्षा आङ्गिरस घोर ने कृष्ण को दी थी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

और वह "त्वं अक्षितमसि त्वं अच्युतमसि त्वं प्राण संशितमसि" अथर्ववेद की शिक्षानुसार ओ३म् का उच्चारण करते हुए दुनिया से जाता हुआ उसे लोग देखा करते हैं।

श्री कृष्ण ने इस शिक्षा को इतना अपनाया था कि गीता में भी इस शिक्षा को इन शब्दों में कहा है —

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥ (गीता ८।१३)

अर्थात् ब्रह्मवाचक ओ३म् इस अक्षर का उच्चारण करते और "माम्" आत्मा का स्मरण करते हुए जो संसार से जाते हैं वे परम गति को प्राप्त होते हैं।

—०—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पाप-पुण्य विवेचन

वि मच्छ्रथाय रशनामिवाग ऋध्याम ते वरुण खामृतस्य ।
मा तन्तुश्छेदि वयतो धियं मे मा मात्रा शार्यपसः पुर ऋतोः ॥

ऋग्वेद २।२८।५

मन्त्र का भाव इस प्रकार है कि (रशनाम्+इव) रस्सी की तरह (आगः) पाप को (मत) मुझ से (विश्रथय) विशेष रीति से नष्ट कर दें (जिससे) (वरुण) हे श्रेष्ठ ईश्वर (ते ऋतस्य खाम ऋध्याम) तेरे तीनों काल में एक जैसे रहने वाले नियमों =आज्ञाओं के प्रवाह को हम फैलावें। (धियम्. वयत, तन्तुः, मा, छेदि) बुद्धि के विनते हुए तन्तु को न काटें, (ऋतो) समय से (पुरा) पहले अपसः मात्रा, मा, आदि कर्म की मात्रा नष्ट न हो।

मन्त्र में पांच बातें वर्णित हैं—(१) मनुष्य को निष्पाप होना चाहिये। (२) निष्पक्ष होकर ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। (३) जो ऋषि-ऋण हुआ करता है उस उऋण होने के लिए उस ज्ञान को फैलाना चाहिए। (४) इन तीनों बातों की पूर्ति होने पर मनुष्य की बुद्धि का विकास नहीं रुकता और (५) इन चारों बातों के पूरा हो जाने से समय से पहले कर्म की मात्रा कम नहीं होती अर्थात् पूर्ण आयु का उपयोग करते हुए मनुष्य बहु मात्रा में अच्छे कर्म किया करता है।

यह मन्त्र प्रार्थना के रूप में है। जब मनुष्य वेद की मर्यादानुसार जितना काम करता है उतना ही फल प्राप्त करता है न उससे अधिक न उससे कम। तो फिर प्रार्थना क्यों करनी चाहिए? यह सन्देह अनेक पुरुषों के हृदयों में उत्पन्न हुआ करता है। परन्तु ऐसा सन्देह करने वाले ऐसा नहीं सोचते कि प्रार्थना भी एक कर्म है। जब अन्य कर्मों का फल मिला करता है तब प्रार्थना रूपी कर्म का फल क्यों नहीं मिलना चाहिए? प्रार्थना से मनुष्य में निरभिमानता आया करती है। प्रार्थी सदैव अपनी न्यूनता और दूसरों की अधिकता की प्रार्थना करते समय अनुभव करता रहता है फिर उसमें अभिमान कहाँ से आ सकता है। यह तो हुआ प्रार्थना रूपी कर्म का फल परन्तु प्रार्थना का एक दूसरा पहलू भी है और वह यह कि जिस वस्तु की याचना प्रार्थी करता है वह भी उसको प्राप्त हो सकती है या नहीं? वेदों का उत्तर यह है कि वह भी प्राप्त हो सकती है परन्तु वेदों की प्रदर्शित पद्धति अनुसरण करने से ही प्राप्त हो सकती है ऋग्वेद में एक जगह कहा गया है—

न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः ।
यत्सीमुप श्रवद्गिरः ॥ (ऋग्वेद ६।४५।२३)

मन्त्र का भाव यह है कि "चाहे तो अन्न प्राप्ति की प्रार्थना हो चाहे पशुओं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

की, वह ईश्वर इतना देता है जिसकी हद नहीं परन्तु देता उसी समय है जब प्रार्थी अपनी प्रार्थना उसे समीप से सुनावे।" ईश्वर विभु होने से सब जगह विद्यमान है परन्तु प्रार्थी जीव परिच्छिन्न=एकदेशी होने से सब जगह मौजूद नहीं। इसलिए प्रार्थना समीप से सुनाने के लिए वह जगह तलाश करनी चाहिए जहाँ आत्मा परमात्मा दोनों मौजूद हैं। उपनिषद् हमें वह जगह बतलाती है। कठोपनिषद में एक जगह लिखा है—

गुहां प्रविष्टौ परमे परार्द्धे छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति ॥३।१॥

अर्थात् यह गुहा=हृदय मन्दिर है जिसमें आत्मा और परमात्मा दोनों छाया और प्रकाश की तरह प्रविष्ट हैं। तात्पर्य यह है कि हमारी प्रार्थना हृदय की प्रार्थना होनी चाहिए। हृदय की प्रार्थना और जो प्रार्थना हम केवल मुख से करते हैं उन दोनों में अन्तर है। केवल मुख से अनेक अनर्गल प्रार्थनाएँ की जाया करती हैं। उदाहरणार्थ एक आदमी प्रार्थना करता है कि उसके शत्रु का नाश हो जावे। कल्पना करा कि उसका शत्रु भी ऐसी ही प्रार्थना करता है, यदि ये दोनों प्रार्थनायें स्वीकार कर ली जायें तो इसका अर्थ यह होगा कि दोनों ही समाप्त (सफ़ाया) हो जावें। अतः ऐसी अनर्गल प्रार्थनाएँ स्वीकार नहीं हुआ करतीं। हृदय से जो प्रार्थनाएँ की जाया करती हैं उनकी एक विशेषता है और वह विशेषता यह है कि हम हृदय से अपना कल्याण तो चाहते हैं परन्तु कभी किसी दूसरे का कल्याण नहीं। इसलिए प्रार्थना विज्ञान की पहली शिक्षा है कि हमारी प्रार्थना में किसी दूसरे के अनिष्ट करने की भावना नहीं होनी चाहिए। दूसरी शिक्षा यह है कि हम जिस वस्तु की प्राप्ति की प्रार्थना करते हैं उसकी प्राप्ति का जितना यत्न कर सकते हैं उतना अवश्य हमें करके तभी प्रार्थना करनी चाहिए। इस सम्बन्ध में एक बड़ा शिक्षाप्रद उदाहरण एक माता और उसके बच्चे का है। उदाहरण में बतलाया गया है कि माता एक ओर खड़ी है और उसका एक छोटा सा बालक जो अभी घुटनों ही से केवल चलता है दूसरी ओर खेल रहा है। खेलते हुए बालक को भूख लगी तो उसे माता याद आ गई। उसने देखा कि माता उससे कुछ दूर खड़ी है, यह सोचकर कि भूख तो माता के पास जाने ही से शान्त होगी। वह बालक लुढ़कता हुआ माता के पास तक पहुंचा परन्तु माता खड़ी थी, अब बालक की शक्ति से बाहर था कि वह अपने आप को इतना ऊंचा कर देता जिससे माता के स्तनों से दूध पीकर अपनी भूख शान्त कर लेता। तब बालक आशा भरी दृष्टि से माता की ओर निहारने लगा। मानो वह माता से यह कह रहा था कि "अपनी भूख दूर करने का जितना यत्न मैं कर सकता था वह तो मैं कर चुका अब यदि तेरी दया हो तो मेरी भूख शान्त हो सकती है। माता के हृदय में दया के भाव जाग्रत् होते हैं और वह बच्चे को गोद में उठा कर दूध पिला कर उसकी भूख शान्त कर देती है। ठीक यही अवस्था प्रार्थना की है। जब प्रार्थी बच्चे के समान माता के चरणों तक पहुंचा देने के सदृश जितना यत्न वह कर सकता है कर लेता है, शेष की पूर्ति ईश्वर उसकी प्रार्थना स्वीकार करके कर दिया करता है। प्रार्थना के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न समुदायों के भिन्न भिन्न विचार प्रचलित हैं हम उन में से दो का उल्लेख यहां करते हैं।

डाक्टर ऐनी बीसेण्ट ने एक जगह प्रकट किया है कि प्रार्थना किस प्रकार स्वीकार हुआ करती है उनका कहना है कि सूक्ष्म शरीरधारियों के झुण्ड के झुण्ड

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आकाश में घूमा करते हैं और वे जब किसी की प्रार्थना सुन लेते हैं और सुन लेने के बाद उनकी भी इच्छा होती है तो वे उस प्रार्थना को पूरी कर दिया करते हैं। यदि उन्होंने नहीं सुना या सुना भी और उनकी इच्छा न हुई तो वह प्रार्थना अस्वीकार हो जाती है।

ईरान के एक ईरानी के पास एक बैल था और उसके समीप ही एक कुम्हार भी रहा करता था जिसके पास एक गधा था। उस ईरानी को इस कुम्हार के गधे की बोली से बड़ी घृणा थी। एक दिन तंग आकर ईरानी ने प्रार्थना की कि खुदा इस गधे को मार दे। घटना यह घटित हुई कि कुम्हार का गधा तो मरा नहीं परन्तु उस ईरानी का बैल मर गया। ईरानी इस पर विचार करता रहा और विचार का परिणाम यह था कि उसे यह निश्चय हो गया कि खुदा ने उसकी प्रार्थना तो स्वीकार कर ली परन्तु भूल केवल यह हो गई कि उसने मेरे बैल को कुम्हार का गधा समझ लिया। इस निश्चय के हो जाने पर वह अप्रसन्न होकर कहने लगा कि "तुझे इतने दिन खुदाई करते हुए हो गये परन्तु अभी तक गधे और बैल ही को नहीं पहचान सका।" इन प्रार्थनाओं से उसकी विभिन्नता के साथ प्रचलित होने का ज्ञान भली भांति हो जाता है और यह भी प्रकट हो जाता है कि प्रार्थना का वैदिक विचार इतने महत्त्व का है कि उसे शिक्षित समुदाय बिना किसी संकोच के अपना सकता है। उसका वैज्ञानिक समाधान इस प्रकार किया जा सकता है कि मनुष्य की इच्छा-शक्ति उसके अन्तःकरण की एक वृत्ति है। यह अन्तःकरण की वृत्ति अन्तःकरण के अनुकूल काम करने से पुष्ट हुआ करती है। प्रार्थना-विज्ञान बतलाता है कि प्रार्थना अन्तःकरण के अनुकूल काम है। अतः स्पष्ट है कि प्रार्थना से इच्छा-शक्ति का विकास और पुष्टि हुआ करती है और इच्छा-शक्ति के विकास से मनुष्य की इच्छा पूरी हुआ करती है। यह आजकल का सर्वतन्त्र सिद्धान्त है। अस्तु प्रार्थना की अयोग्यता है और व्याख्यान्तर्गत मन्त्र उचित रीति से प्रार्थना के रूप में है।

अब मन्त्र पर विचार करना चाहिए। मन्त्र का पहला चरण यह है कि मनुष्य को पाप से बचना चाहिए। पाप दो प्रकार का होता है, एक व्यक्तिगत पाप दूसरा समाजगत पाप। व्यक्तिगत पाप उन स्वस्थता के नियमों के तोड़ने का नाम है जिनसे आत्मा, मन और शरीर सभी नीरोग और पुष्ट रहा करते हैं। विद्धानों ने रोगी होने को इसीलि एपाप कहा है। अमरीकन लेखक मार्डन ने एक व्यक्ति का मत उल्लेख करते हुए प्रकट किया है कि वह इतने नियम से रहा करता था कि कभी बीमार नहीं होता था। एक व्यक्ति ने उनसे पूछा कि तुम आखिर कभी बीमार हुए हो? उसने उत्तर दिया कि मुझे इस व्यसन के पूरा करने की कभी फुर्सत नहीं हुई, वह बीमार होने को एक व्यसन समझा करता था। मार्डन ने इस प्रश्नोत्तर का उल्लेख करते हुए रोगी होने वालों के लिए एक बड़ी कठोर बात लिखी है। उसका कहना है—

"Every man is a rascal when he is sick".

अर्थात् समाजगत पाप समाज के नियमों को तोड़ने को कहते हैं। समाज का एक नियम है **"मा गृधः कस्य स्विद्धनम्"** अर्थात् किसी के भी धन का लालच मत कर। जब मनुष्य चोरी आदि के द्वारा किसी का धन लेता है तब वह समाजगत पाप करने का अपराधी बना करता है। समाज का एक दूसरा नियम है **"मातृवत्पर-दारेषु"** अर्थात् अपनी पत्नी से भिन्न जब कभी किसी स्त्री को देखो तो तुम्हारे

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भीतर उसके लिए मातृ-भावना पैदा होनी चाहिए अर्थात् हृदय में यह विचार उत्पन्न होना चाहिए कि एक ऐसी ही देवी ने मुझे उत्पन्न किया है। यदि कोई इसके विपरीत भावना उत्पन्न करता है यो वह भी समाजगत पाप करता है। इस प्रकार हमने देख लिया कि व्यक्ति या समाज के पुष्ट होने के नियमों को तोड़ना पाप है। कुछेक पश्चिमी जड़वाद से प्रभावित व्यक्ति कहने लगते हैं कि यह पाप और पुण्य का कथन पुराने ढांचे की बात है। इसका आज के युग में नाम नहीं लेना चाहिए। आज का युग तो खाने पीने और चैन करने का युग है। इसमें पाप और पुण्य कैसा? एक समय वाल्मीकीय रामायण का वह प्रकरण मेरे सामने था जब सीता को लंका की अशोक वाटिका में रावण ने देखा कि वह दुबली पतली और राम के वियोग से दुःखी और व्यथित हो रही है तो उसने सीता की युवावस्था पर दया करते हुए कहा कि तेरे तो यह खाने पीने और चैन करने का समय है तू क्यों इतने कष्टों को भोग रही है? वाल्मीकि के शब्दों में रावण ने सीता से कहा **"भुक्ष्व भोगान्यथा कामं पिब भीख रमस्व च।"** रावण के यह शब्द **"भुङ्क्ष्व पिब रमस्व च।** "Eat drink and be marry" के शाब्दिक अनुवाद हैं, इनमें क्रम का भी भेद नहीं है। समझा यह जाता था कि यह खाओ पियो चैन करने की शिक्षा पश्चिमी जड़वाद की सन्तति है। परन्तु रामायण के देखने से प्रकट होता है कि यह रावणकालीन शिक्षा है। इसमें एक बात है जिस पर ध्यान देना चाहिये। वाल्मीकि ने एक असुर के मुंह से यह बात कहलवाई है। रामायण के श्रेष्ठ व्यक्तियों में से किसी के मुंह से यह खाओ पिओ की बात नहीं कहलवाई। इसका भाव यह हुआ कि यह असुरीय शिक्षा है, दैवी नहीं। परन्तु बात यह है कि चाहे यह दैवी शिक्षा हो या असुरीय। जो व्यक्ति पाप करके अपने को पापी बना लेता है वह न खा सकता है और न पी सकता है और न चैन कर सकता है। एक दो उदाहरणों से यह बात साफ हो जायगी। राकफ़ोलर अमरीका के महान् सम्पत्तिवान् व्यक्तियों में ऊँचा स्थान रखता था। अभी कुछेक वर्ष पूर्व उसकी मृत्यु हुई थी। उसका पेट्रोलियम का कारोबार प्रायः समस्त देशों में फला हुआ था फिर भी उसके कोष में बहुत सामान व्यर्थ पड़ा हुआ था जिससे उसे कोई लाभ नहीं हो रहा था। उसने एक बार सोचा कि उसके निज के काम में कितना धन आता है तो भीतर से उत्तर मिला कि तूने रोगी होकर शारीरिक पाप किया है। इसलिए डाक्टर ने जो बतला रक्खा है कि तुम कुछेक बिस्कुट खाया करो और जौ का पानी पिया करो। इसके सिवा तुम्हारे हिस्से का कुछ नहीं। यदि किसी ने सामाजिक पाप किया है और चोरी करके जेल में कैद भुगत रहा है तो वह सिवाय जेल की बदनाम रोटियों के और क्या खा सकता है? इससे साफ़ प्रकट है कि पापी मनुष्य संसार के सभी वैभव से वंचित हो जाता है। फिर पाप-पुण्य पुराने ढाँचे की बात नहीं अपितु वर्तमान जगत् की जीती-जागती सच्चाई है। इसलिए प्रत्येक को उस पर ध्यान रखने के लिए बाधित होना पड़ता है। जगत् का उपयोग करने के लिए पापों से बचना अनिवार्य है। ऋचा के पहले चरण में प्रायः उचित रीति से उससे बचने की शिक्षा दी गई है।

अब ऋचा के दूसरे चरण पर विचार करना चाहिए। इसमें कहा गया है कि मनुष्य का कर्त्तव्य है कि दिव्य नियमों और शिक्षाओं का जगत् में विस्तार करे। विस्तार होने पर प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य हो जाता है कि मान प्राप्त करे जिससे भावी जीवन सफलता का मुंह देखे। मान प्राप्त करने से प्रत्येक ऐसे विद्यार्थी के हिस्से में ऋषि ऋण (गुरु का कर्जा) हो जाता है जिसे उसे चुकाना पड़ता है। उसके चुकाने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का एकमात्र तरीका **"यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः"** (यजुर्वेद २६।२) की शिक्षानुसार यह है कि जो ज्ञान गुरु ने तुमको दिया है उसे तुम अन्यों तक पहुँचा दो जिससे जो ज्ञान संसार में जगत् की सम्पत्ति है उसे संसार से जाना नहीं चाहिए। इसी ऋषि-ऋण की मर्यादा का पालन करने से वेद, उपनिषद् दर्शन आदि अनेक ग्रन्थ हम तक पहुँचते हैं और हम उनसे लाभ उठाते रहे हैं। इसीलिए इस ऋण के चुकाने के लिए प्राप्त ज्ञान का विस्तार अनिवार्य कर्तव्य ठहरता है। अब से कुछेक शताब्दी पहले बीच का युग, जिसे देश की गिरावट का काल कहा जा सकता है, इस देश में ऐसा आ गया था जिसमें जिन व्यक्तियों में जो उत्तम बातें मुख्य रूप से विद्यमान थीं उनका उन्होंने इसीलिए प्रचार नहीं किया कि उस बात का ज्ञान बहुत लोगों को हो जाने से उनकी प्रतिष्ठा की हानि होगी। इस संकोच का फल यह हुआ कि ऋषि-ऋण चुकाने की मर्यादा शिथिल हो गई और देश से अनेक उपयोगी विद्याएँ लुप्त हो गईं। उन लुप्त हुई विद्याओं में से हम एक का यहाँ उदाहरण देते हैं। जिस प्रकार "सूर्यकान्त" आतिशी शीशा होता है जो इस समय हमारे काम में आ रहा है। इन शीशों की ऐनकें बनती हैं जिन्हें "खुर्दबीन" कहा जाता है और जिनसे अत्यन्त सूक्ष्म वस्तु को जिन्हें आंखों से नहीं देख सकते देख लिया जाता है। इस से सूरज की विद्यमानता में अग्नि भी उत्पन्न की जा सकती है। इसी प्रकार एक चन्द्रकान्त मणि भी होती है जिससे चन्द्रमा की किरणों के उस पर पड़ने से जल की बूंदें पैदा हो जाती हैं। इन चन्द्रकान्तों का वर्णन हम निम्न ग्रन्थों में पढ़ते हैं :—

नैषध हर्ष के रचे हुए इस काव्य में, एक वाटिका का उल्लेख है जिसमें इसी चन्द्रकान्त के थमले बने हुए थे, उनमें लगे पौदों को सींचना नहीं पड़ता था। चन्द्रमा की किरणों के पड़ने से स्वयमेव जल पैदा हो जाता था और वह पौदों के लिए अमृत का काम दिया करता था।

चम्पू रामायण में एक जगह रावण का महत्त्व प्रदर्शित करते हुए वर्णन आता है कि इन्द्र उसका पंखा खींचा करता था, चन्द्रमा उसका पानी भरा करता था इत्यादि। कई पश्चिमी लेखक इसे गप कहते हैं। यह उनकी मूर्खता है। इन्द्र का नाम बिजली है। आज कौन से ऐसे धनी पुरुष नहीं हैं जिनके यहां बिजली नहीं? यदि रावण के यहाँ भी बिजली के पंखे हों तो कौन से आश्चर्य की बात है? जब तक योरोप के लोगों ने हवाई जहाज नहीं बनवा लिये थे तब तक वे रामायण में वर्णित पुष्पक विमान को भी गप ही कहते थे। परन्तु आज उसे गप कहने का कौन साहस कर सकता है।

चन्द्रकान्त के घड़े बनाये जाते थे। उन्हें चांदनी रातों में चन्द्रमा के सम्मुख रखने से चारों ओर से चन्द्रमा की किरणें उस पर पड़ा करती थीं। उससे जल का पैदा होना शुरू हो जाता था। यदि इस घड़े को चन्द्रमा ने नहीं भरा तो किसने भरा? सुश्रुत में भी चन्द्रकान्त का उल्लेख मिलता है। जब शरीर के भीतर अत्यन्त गर्मी हो तो उसे शान्त करने के लिए चन्द्रकान्त से उत्पन्न जल की कुछ बूंदें दी जाती थीं। उससे वह गर्मी शान्त हो जाती थी।

"आईने अकबरी" के लेखक अब्दुल फ़ज़ल ने एक स्थान पर लिखा है कि इस देश के लोगों को एक शीशे का ज्ञान था जिसे चन्द्रमा के सम्मुख रखने से जल पैदा हो जाया करता था। इस प्रकार चन्द्रकान्त के होने में तो कोई सन्देह नहीं रहता परन्तु आज वह हमारे काम में नहीं आता। कारण यही है कि जिस अन्तिम व्यक्ति को इसका ज्ञान था उसने अन्यों को नहीं बतलाया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अतः ऋषि-ऋण को मर्यादा का पालन करना, जगत् के कल्याण के लिये आवश्यक है।

ऋचा का तीसरा चरण यह है कि बुद्धि को प्रेरिता या मेधावी बनाना चाहिए। बुद्धि अच्छी चीज भी है और जितनी सम्भव है बुरी चीज भी है। हम अनेक अच्छे काम बुद्धि से किया करते हैं परन्तु जितनी जालसाजी की जाती हैं और इसी प्रकार के अनेक काम संसार को हानि पहुँचाने के लिए किए जाते हैं वे भी बुद्धि ही से किए जाते हैं। इसीलिए बुद्धि के सुधार की आवश्यकता होती है। गायत्री मन्त्र में यह प्रार्थना नहीं कि ईश्वर मनुष्य को बुद्धि देवे। बुद्धि तो मनुष्य को अन्य शरीरावयवों की तरह मिला ही करती है। प्रार्थना यह है कि **"धियो यो नः प्रचोदयात्"** अर्थात् ईश्वर हमारी बुद्धि को बनावे जिससे वह बुराई की ओर न जाकर भलाई की ओर चलें। यही अभिप्राय ऋचा के तीसरे चरण का है। ऋचा के अनुसार मनुष्य जब निष्पाप हो जाता है, ज्ञान प्राप्त करके ऋण से उऋण भी हो जाता है तब उस की बुद्धि सुधरी हुई प्रेरिता या मेधावी बुद्धि बना करती है। मनु ने इसीलिए लिखा है कि **"बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति"** अर्थात् बुद्धि ज्ञान से शुद्ध हुआ करती है।

ऋचा के चौथे और अन्तिम चरण में पूर्णायु प्राप्ति की प्रार्थना है। आयु के सम्बन्ध में अनेक भ्रममूलक विचार फैले हुए हैं। योगदर्शन के **"सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः।"** सूत्र को लोगों ने ठीक तरह से समझने का यत्न नहीं किया। सूत्र का शब्दार्थ और भावार्थ इस प्रकार है। मूल (कर्म-वासना) के रहते हुए उनका फल, जाति, आयु और भोग होते हैं। जाति का अभिप्राय मनुष्य, पशु, पक्षी आदि योनियों से है। आयु का अभिप्राय उसी मिली हुई योनि की आयु से है। भोग का अभिप्राय मिले हुए कर्म फल से है। प्रत्येक योनि की आयु नियत होती है। हाथी, घोड़ा, गाय, बैल, पशु, पक्षी इन सभी योनियों की आयु नियत है। इसी प्रकार मनुष्य योनि की आयु भी सौ वर्ष की नियत है। जैसा **"पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम्।"** (यजुर्वेद ३६।२४) आदि वेद मन्त्रों में वर्णित है परन्तु मनुष्य अपने कर्मों से इस आयु को घटा बढ़ा भी सकता है। इसीलिए मन्त्र में भूयश्च शरदः शतात् सौ वर्ष से अधिक तक भी देखें सुनें आदि कहा गया है। वेद में एक स्थान पर तिगुनी आयु तक प्राप्त करने की प्रार्थना करने का विधान है।

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।
यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्॥ (यजुर्वेद ३।६२)

इससे स्पष्ट है कि मनुष्य की आयु वही है। उस योनि की है जिसमें वह उत्पन्न हुआ है और उसे वह कर्मों से घटा बढ़ा सकता है। उपनिषद् में एक जगह लिखा है कि मनुष्य की आयु श्वासों पर निर्भर है। प्राण को प्राणियों की आयु कहा गया है। वही पूर्णायु प्राप्त किया करते हैं जो प्राणों का ठीक प्रयोग किया करते हैं अर्थात् ऐसे कर्म नहीं करते जिस से थोड़े काल में अधिक श्वास लेने के लिए मनुष्य बाधित हो। उपनिषद् का अभिप्राय यह है कि नशे, व्यभिचार आदि दुष्कृत्यों से श्वास अधिकता के साथ थोड़े काल में व्यय हो जाते हैं। इससे १०० वर्ष की नियत आयु का वर्षों के हिसाब से भी ह्रास हो जाता है और ब्रह्मचर्यादि सुकर्मों से आयु के श्वास दीर्घकाल में भी कम चलते हैं। इसलिए वर्षों के हिसाब से आयु की वृद्धि हो जाती है। इस ऋचा की विशेषता यह है कि इसमें आयु की नाप तोल कर्म की मात्रा से की गई है

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अर्थात् जो अधिक अच्छे कर्म करे वेद की दृष्टि में वह अधिक आयु वाला है और जो अच्छे कर्मों को कम मात्रा में करता है समझना चाहिए कि उसकी आयु कम है। ऋचा के इस अन्तिम चरण का अभिप्राय यह है कि मनुष्य को समय का सदुपयोग करना चाहिए जिससे वह अधिक से अधिक सत्कर्म कर सके। जगत् में सबसे अधिक मूल्यवान् सम्पत्ति समय ही है। इंग्लैंड की महारानी एलिजाबेथ ने अन्त समय में डाक्टरों से अधिक जीवित रखने की प्रार्थना की और कहा कि वह प्रति मिनट एक लाख पौंड=(१३ लाख रुपये) तक देने के लिए तैयार है परन्तु कौन उसे जीवित रख सकता था ? इससे साफ प्रकट है कि एक समय एलिजाबेथ को एक मिनट १३ लाख रुपये में भी नहीं मिल सका। एक विद्वान् ने समय का एक व्यंग्य चित्र (कारटून) बनाया था। उसके सिर के आगे लम्बे-लम्बे बाल थे परन्तु पीछे गंजी खोपड़ी थी। इस चित्र का अभिप्राय यह है कि आने वाले समय को आगे से पकड़ लो वह तुम्हारे साथ चलेगा और तुम्हारे अनुकूल रहेगा परन्तु यदि तुमने प्रमाद से उसे आगे निकल जाने दिया और चाहो कि पीछे से जाकर पकड़ लें तो पीछे गंजी खोपड़ी है हाथ कुछ न आवेगा और पछताते हुए ही रह जाना पड़ेगा। इसलिए कहावत प्रचलित है कि "गया वक्त फिर हाथ आता नहीं।"

ऋचा प्रार्थना के रूप में है। इसमें प्रार्थना की उपयोगिता वर्णन की गई है इसलिए प्रार्थना करना आवश्यक है। ऋचा में पांच बातें वर्णित हैं—(१) मनुष्य को निष्पाप होना चाहिए, (२) ज्ञान-प्राप्ति करनी चाहिए, (३) ऋषि-ऋण से उऋण होने के लिए उस प्राप्त ज्ञान का विस्तार करना चाहिए, (४) बुद्धि को प्रेरिता=मेधावी (श्रेष्ठ) बनाना चाहिए जिससे वह बुराई की ओर न जा सके, और (५) अच्छे कर्मों द्वारा पूर्णायु का उपभोग करना चाहिए।

—०—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पापों से छुटकारा

यद्विद्वांसो यदविद्वांस एनांसि चकृमा वयम् ।
यूयं नस्तस्मान्मुञ्चत विश्वे देवाः सजोषसः ।। (अथर्ववेद ६।११५।१)

मन्त्र का भाव इस प्रकार है (यत्, विद्वांसः) जो जानकर और (यत् अविद्वांसः) जो अनजान से (एनांसि, चकृमा, वयम्) हमने पाप किये हैं (विश्वे देवाः) हे समस्त विद्वानो ! (यूयं तस्मात् नः मुञ्चत) आप उनसे हमें छुड़ावें (सजोषसः) प्रेम के साथ।

संसार में मनुष्यों से भूलें हुआ करती हैं। कुछ भूलें तो हम जानकर किया करते हैं और कुछ अनजान से हो जाया करती हैं। उन सबको दूर करने की हमारी इच्छा होनी चाहिए। साथ ही देश के अग्रगणी विद्वानों की भी। वेद में कर्त्तव्य ठहराया गया है कि वे प्रेम के साथ हमको उन पापों से छुड़ावें।

देश के नेताओं और उनके अनुगामियों को कैसा होना चाहिए। इसका संकेत इस वेद मन्त्र में किया गया है। नेताओं के लिए वेद मन्त्र में वेद शब्द प्रयुक्त हुआ है। मनुष्यों के तीन भेद होते हैं (१) मनुष्य जो अच्छे कर्म भी करते हैं बुरे भी, (२) पितर जो कर्म तो प्रायः सभी अच्छे करते हैं परन्तु उन कर्मों के साथ अपना स्वार्थ भी रक्खा करते हैं अर्थात् वे सकामता से कर्म किया करते हैं परन्तु देश और समाज की रक्षा करना उनका भी धर्म होता है और इसीलिए वे पितर कहे जाते हैं। मौर्य साम्राज्य में पितर शब्द नगररक्षक (कोतवाल) के लिए प्रयुक्त हुआ करता था। (३) देव तो उच्च श्रेणी के विद्वान् और निष्कामता के साथ कर्म करने वाले होते हैं। उनका जीवन देश और जाति का जीवन हुआ करता है। ऐसे ही व्यक्तियों का अधिकार हुआ करता है कि देश और जाति का नेतृत्व करें।

अनुगामियों को कैसा होना चाहिए, इसके लिए उनके दो कर्तव्य ठहराए गये हैं। (१) उन्हें अपने को अच्छा बनाना चाहिए और जानना चाहिए कि उनके भीतर क्या-क्या दोष हैं और किस प्रकार वे दूर किये जा सकते हैं। (२) उन्हें सच्चे अर्थों में अनुगामी बनने के योग्य अपने को बनाते हुए, नेताओं से आशा रखनी चाहिए कि वे उन्हें अच्छा बनाने में सहायक होंगे।

अपने को अच्छा बनाने और अपने दोष और गुणों को जानने के लिए मनुष्य का कर्तव्य है कि आत्म निरीक्षण (Self retrospection) के नियम को अपनावें। मनुष्य जब इस नियम को अपनाता है तो आरम्भ में तो अनेक अपने किए कृत्य उसकी दृष्टि से ओझल रहते हैं परन्तु दो सप्ताह के अभ्यास के बाद ही अपना किया हुआ कृत्य मानो चित्र बनकर सामने आ जाता है। असफलता में परिवर्तन करने के लिए यही अचूक औषधि है कि आदमी अपना दोष ढूंढे कि क्यों असफलता हुई है। ऋषि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दयानन्द का जीवन इस शिक्षा का क्रियात्मक उदाहरण है। जब हरिद्वार के एक कुम्भ के अवसर पर उन्होंने पाखण्ड-खण्डनी पताका फहराई थी उस समय लगभग दो मास उन्होंने वैदिक धर्म का प्रचार किया था। इस बीच में अनेक शास्त्रार्थ, प्रश्नों के उत्तर और उपदेश दिये। लोगों को समझाने का यत्न किया, यह सब कार्य हो चुका। यात्री अपने-अपने घरों को वापस चले गये। तब शान्ति के साथ बैठकर ऋषि दयानन्द ने अपने अन्तरात्मा से प्रश्न किये कि उनके प्रचार का जितना फल होना चाहिए था, हुआ या नहीं। उत्तर निषेधात्मक मिलते, पर जब कारण जानने की इच्छा प्रकट की तो उत्तर मिला कि "अभी तुम्हारे भीतर तपस्या की कमी है।" ऋषि दयानन्द हृदय की बात सुनने वाले थे। उन्होंने हृदय के निर्णय को सुना और वहीं उनके पास जो कुछ था उसका सर्वमेध यज्ञ किया। अपने पास गिनती की एक लंगोटी के सिवा कुछ नहीं रक्खा और हरिद्वार तीर्थ से गंगा के किनारे-किनारे विचरना शुरू किया। गर्मी, वर्षा और शीत प्रत्येक वर्ष आई और चली गई परन्तु उनके शरीर के नग्न रखने में कोई अन्तर नहीं पड़ा। उनके पास एक ही लंगोटी थी। इसलिए प्रत्येक दिन का प्रत्येक ऋतु में यह नियम सा बन गया था कि वे तीन बजे रात को स्नान करके लंगोटी को बाहर सूखने डालकर स्वयं गंगा में बैठकर अभ्यास और ईश्वर-चिंतन किया करते थे। उनमें इस तप से कितनी सहनशीलता आ गई थी उसका एक उदाहरण दिया जाता है। जब वे कर्णवास के समीप गंगा-तट पर रहा करते थे तो एक गंगा-पुत्र का नियम था कि वह उनके पास जाकर दस-बीस गालियां उन्हें दे आता था और तब वह अपना काम शुरू करता था। इस बीच में स्वामी जी का नियम था कि जो कोई पहले उनके लिए भोजन ले आता था तो उसे वे अपने काम में ले आया करते थे। उसके बाद कोई कुछ भी लाता था उसे बंटवा दिया करते थे। एक दिन की बात है कि उनके भोजन कर लेने के बाद एक सज्जन एक थाल में मिठाई रखकर स्वामी जी के लिए लाए। उस समय उनके पास और कोई सज्जन नहीं थे इसलिए उन्होंने वह मिठाई का थाल उसी गाली देने वाले गंगा-पुत्र के पास भेज दिया। पहले तो उसे विश्वास नहीं हुआ कि वह मिठाई स्वामी जी ने उसी के लिए भेजी है, परन्तु जब विश्वास हो गया तब वह लज्जित अश्रुपूर्ण नेत्र के साथ स्वामी जी के पास आकर पांवों पर पड़ गया और अपने अपराध की क्षमा मांगी। उन्होंने उसे सान्त्वना देकर लौटा दिया। इस प्रकार नौ वर्ष तप करते हुए उन्होंने व्यतीत किये। उसके पश्चात् उन्होंने आर्यसमाज की स्थापना का कार्य प्रारम्भ किया। अस्तु यह आत्म-निरीक्षण का सुनहरा नियम प्रत्येक आत्मोन्नति के इच्छुक को अपनाना चाहिए।

पाप, जिससे बचने की शिक्षा इस मन्त्र में दी गई है वह दो प्रकार का होता है—एक व्यक्तिगत, दूसरा समाजगत। व्यक्तिगत पाप अपने को रोगी बनाता है, अथर्ववेद के तीसरे काण्ड का ३१वां सूक्त इन्हीं पापों की निवृत्ति से संबंधित है, उसमें रोगी होने को पाप बतलाया गया है। इस सूक्त के प्रत्येक मन्त्र का भाग इस प्रकार है—**"व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा"** जिसके अर्थ ये हैं कि मैं समस्त यक्ष्मा (रोग रूपी) पापों से दूर रहूँ और पूर्ण आयु से संयुक्त होऊं॥ इसी प्रकार समाजगत पाप चोरी करना आदि है, इस से शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक नियमों का भंग होता है, वे सभी धर्मशास्त्र के रूप से पाप कहे गये हैं॥ उदाहरण के लिए देखिए—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"वैद्यकशास्त्र"	"धर्मशास्त्र"
(१) नशों के प्रयोग से फेफड़े खराब होते हैं, हृदय कमज़ोर होता है और समस्त शरीर के आन्तरिक कार्य खराब होते हैं।	इसलिए नशों का खाना पीना पाप है।
(२) व्यभिचार से वीर्य-नाश होता है, मस्तिष्क कमजोर होता है और तमाम शरीर निर्बल हो जाता है।	इसलिए व्यभिचार पाप है।
(३) स्नान न करने से शरीर स्वच्छ नहीं होता और रोम कूपों का द्वार बन्द हो जाने से शरीर के भीतर का उत्पन्न मल नहीं निकलता और भीतर विजातीय द्रव्य (Foreign matter) के रूप में रहकर रोगोत्पत्ति का कारण बनता है।	इसलिए स्नान न करना पाप है।
"समाजशास्त्र"	
(४) असत्य व्यवहार से जहां व्यक्तिगत पतन होता है वहां समाज में अविश्वास फैलकर समाज का संगठन नहीं होने पाता और समाज की मान-हानि होती है।	इसलिए झूठ बोलना पाप है।
(५) चोरी करने, डाका डालने से समाज की हानि होती है और व्यक्तियों का व्यक्तिगत और समाजगत दोनों का पतन होता है।	इसलिए चोरी करना, डाका डालना पाप है।

अस्तु, पापी बनने से मनुष्य या मनुष्य-समाज संसार की निमतों से भी वंचित हो जाता है। जर्मन के पुराण शास्त्र (Mythology) में एक पापी नेंबलूस की गाथा है कि वह पानी में तो खड़ा था और शिर पर फलदार डालियां लटक रही थीं परन्तु वह पापी भोजन और पानी दोनों से वंचित था। ऋग्वेद में एक जगह कहा गया है :—"**अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णविदिज्जरितारम्। मृडा सुक्षत्र मृडये**" अर्थात् जलों के भीतर खड़े हुए मुझे प्यास ने घेर रक्खा है। हे शक्तिशाली प्रभु! दया करो। सचमुच जगत् में सब कुछ होते हुए पापी उन से वञ्चित रहा करते हैं।

मन्त्रान्त में नेताओं का यह भी कर्त्तव्य ठहराया गया है कि वे अपने अनुगामियों के पाप छुड़ावें परन्तु प्रेम के साथ, उन्हें चिढ़ाकर अथवा अन्य प्रकारक के कष्ट देकर नहीं। किस प्रकार प्रेम के साथ पाप छुड़ाए जाते हैं इसका एक बड़ा सुन्दर और शिक्षाप्रद उदाहरण चैतन्य के जीवन में मिलता है। भक्ति-मार्ग के प्रचारक चैतन्य बंगाल के एक नगर में अपने साथियों के साथ जाकर एक वाटिका में ठहरे। वहाँ उनसे जो भी मिलने आया उन्होंने उनसे एक प्रश्न करना शुरू किया कि तुम्हारे नगर में सबसे बड़ा पापी कौन है? सबने एक स्वर में मघाई की ओर संकेत किया। चैतन्य

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ने मघाई को बुलाया उसके न आने पर उसे जबरन पकड़कर बुलवाया गया। मघाई को तो स्वभावतः बार-बार यह बात ध्यान में आ रही थी कि आज्ञा का पालन न करना और संदेशवाहक के साथ बुरा बर्ताव करने के अपरावों के दण्ड के लिए वह वाटिका में बुलाया गया है। चैतन्य ने उसके लिए आराम से लेटने के लिए अच्छा गुदगुदा बिस्तर बिछवाया हुआ था। मघाई उस पर लिटा दिया गया परन्तु उसकी बेचैनी बढ़ती जा रही थी। वह सोच रहा था कि पता नहीं आज किस प्रकार का और किस प्रकार से दण्ड मिलेगा जिसके लिए वह यहाँ लिटाया गया है। देखता क्या है कि श्री चैतन्य देव उसके पांव की ओर आकर बैठ गये और अपना हाथ उसके पांव पर इस प्रकार रक्खा कि जैसे कोई किसी के पांव दाबना चाहता है। इस परिक्रिया को देखते ही मघाई का हृदय उलट-पुलट हो गया। अब वह पहले वाला मघाई नहीं रह गया। वह घबड़ाकर एक साथ उठ बैठा और चतन्य के हाथों को पकड़ कर अपने पांवों से हटा दिया कि "मैं बड़ा पापी हूँ मैंने यह अपराध किया, आपने क्यों अपने पवित्र हाथों को मेरे अपवित्र शरीर पर रखकर अपवित्र किया।" अब उसकी यह हालत है कि जो किसी भी व्यक्ति की होती है जिसमें आत्मग्लानि की भावना जाग्रत् हो उठती है। मनुष्य जब आत्मनिरीक्षण करता है और बहुमात्रा में उसके अवगुण उसके सामने आने लगते हैं तो फिर उसे अपने ही से घृणा होनी आरम्भ हो जाती है। फल इस आत्मग्लानि का यह होता है कि अब वे अवगुण उसके भीतर नहीं रहने पाते। वह सचमुच बड़ा सौभाग्यवान् होता है जिसके भीतर यह आत्मग्लानि की भावना जाग्रत् होती है। अब मघाई का हाल यह है कि वह अपने एक-एक अवगुण को प्रकट कर रहा है और आंखों से अश्रुधारा प्रवाहित है। चैतन्य महोदय ने उसे सान्त्वना देने के लिए कहा कि मघाई अब तुम क्यों दुःखी हो रहे हो? तुमने तो अपना प्रायश्चित्त कर लिया। प्रायश्चित्त वास्तव में एक बड़ा सुनहरा नियम है और प्रत्येक व्यक्ति को भूल करने पर उसका कुछ न कुछ प्रायश्चित्त अवश्य कर लेना चाहिए। यहां यह बात याद रखनी चाहिए कि प्रायश्चित्त से यह नहीं होता कि किये हुए कर्मों का फल न मिले। फिर यह प्रश्न है कि प्रायश्चित्त क्यों करना चाहिए? मनुष्य जब किसी कामना के साथ कोई भी कर्म करता है तो कर्म से जहां कर्म का फल मिला करता है उसके साथ ही उस कर्म की एक वासना बना करती है वह उस कर्म को फिर दुहराने की प्रेरणा भीतर से करती रहती है। प्रायश्चित्त से यह वासना नष्ट हो जाती है और उस कर्म के फिर दुहराने की प्रेरणा करने वाली कोई शक्ति भीतर नहीं रहा करती है। सबसे अच्छा प्रायश्चित्त यह है कि प्रायश्चित्त करने वाला अपना अपराध जनता के सम्मुख स्वीकार कर लेवे। इसी को पापों की स्वीकृति (Confession) कहते हैं। चैतन्य ने मघाई से इसी प्रायश्चित्त के कर लेने की बात कही थी। अर्थात् उसने जनता के सन्मुख अपने पापों को स्वीकार कर लिया था। जरूरत नहीं कि इस मघाई की आख्यायिका का और अधिक विस्तार किया जाय, संक्षेपतः यह है कि चैतन्य के जीवन-चरित्र के पढ़ने से पता चलता है कि उनके जिस शिष्य ने, उनके सम्प्रदाय का सबसे अधिक प्रचार किया वह यह मघाई ही था। चैतन्य ने जिस प्रकार प्रेम से मघाई से उसके पापों को छुड़ा दिया वेद मन्त्र में संकेत है कि इसी प्रकार समाज के अग्र-गन्ताओं का काम है कि अपने अनुगामियों में पापों और बुराइयों को छुड़ाते रहा करें। वेद की इस शिक्षा के अनुसार विद्वानों को नियम कर लेना चाहिए। जैसा इस नीति के वाक्य में कहा गया है—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

न त्वहं कामये स्वर्गं न च राज्यं न पुनर्भवम् ।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनाम् आर्तिनाशनम् ॥

अर्थात् मेरी कामना राज्य, स्वर्ग की प्राप्ति अथवा पुनर्जन्म की नहीं होनी चाहिए; मेरी कामना यह होनी चाहिए कि दुःखी प्राणियों के दुःखों का नाश किया जावे ।

उन्नति पथ

उत्क्रामातः पुरुष माव पत्था मृत्योः पड्वीशमवमुञ्चमानः ।
मा च्छित्था अस्माल्लोकादग्नेः सूर्यस्य संदृशः ॥ (अथर्ववेद ८।१।४)

मन्त्र का भाव इस प्रकार है—(पुरुष, अतः, उत्क्राम) हे पुरुष ! वहां से ऊपर चढ़ (मा अव पत्था) मत नीचे गिर, (मृत्योः पड्वीशम् अवमुञ्चमानः) मौत की बेड़ी से (अपने को) छुड़ाता हुआ । (अस्मात् लोकात्) इस लोक से और (अग्नेः सूर्यस्य संदृशः) अग्नि और सूर्य की सम्मुखता से (माच्छित्थाः) मत दूर कर । अस्तु इस मन्त्र में चार शिक्षाएँ हैं :—(२) उन्नति करते हुए आगे बढ़ो (२) मृत्यु की बेड़ी को काट दो (३) इस जगत् से पृथक् न होना और अग्नि तथा सूर्य के प्रकाश से लाभ उठाना । अब इन चारों बातों पर विचार किया जाता है ।

उन्नति के पथ को ग्रहण करना । इस प्रकार की शिक्षा वेदों में अनेक जगह मिलती हैं । एक जगह लिखा है **"उत् यानं ते पुरुष नावयनम्"** (अथर्ववेद ८-१-१) अर्थात् हे पुरुष, तेरी उन्नति की ओर गति हो अवनति की ओर नहीं । फिर एक जगह अंकित है **"एतं पन्थां मा गा । एष भीमः ।"** (अथर्व० ८।१।१०) अर्थात् इस अवनति के मार्ग से न जा (क्योंकि) यह भयानक है । फिर एक जगह लिखा है **एतत् तमः मा प्रपत्थाः ते परस्तादभयम् ।"** (अथर्व ८।१।१०) अर्थात् यह अन्धकार है, इस अवनति के मार्ग में मत गिर । तेरे आगे भय हैं । इस प्रकार उन्नति का मार्ग ग्रहण करने और अवनति की ओर न जाने की जगह जगह शिक्षा मिलती है । अन्य भाषाओं में भी इस प्रकार की शिक्षाएं मिलती हैं । Do or die अर्थात् करो या मरो अथवा Grow or die the nature's motto अर्थात् आगे बढ़ो या मरो । यह आदर्श प्राकृतिक नियम हमारे सामने रखते हैं । इसी आदर्श को सम्मुख रखते हुए फिर एक जगह कहा गया है "you cheat yourself when you do poor

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

work" अर्थात् जब तुम पूरा काम नहीं करते हो तो तुम अपने ही को धोखा देते हो। इसी प्रकार एक और विद्वान् का कथन है कि जो व्यक्ति प्रतिदिन एक आने वाले भय को दूर नहीं करता उसका जीना निरर्थक है। इस मार्ग का अवलम्ब लेकर जापान देश ने कितनी उन्नति की है, २७ जुलाई १९३७ के एक हिन्दी पत्र में छपा था कि जापान में पहला समाचार-पत्र १८६८ ई० में निकला था परन्तु १९३८ में ७० वर्ष के बाद १००० दैनिक और २८५० साप्ताहिक तथा मासिक पत्र निकलते हैं। एक करोड़ अखबार प्रतिदिन छपते हैं। जापान देश की केवल ७ करोड़ आबादी १९३८ में थी। एक-एक समाचार-पत्र १० से १५ लाख तक छपता है जो वहां प्रभावशाली समझे जाते हैं। प्राथिपा आदि कतिपय पत्रों के हवाई जहाज और वे तार के तारघर अपने हैं। एक दैनिक पत्र की वार्षिक आय ३७॥ लाख है। महान् नेपोलियन असम्भव शब्द को मूर्खों के कोश का शब्द समझा करता था। अस्तु, इस प्रकार तुमने देख लिया कि उन्नति के पथ ग्रहण करने की शिक्षा सारा संसार दे रहा है।

मृत्यु की बेड़ी काटना—मृत्यु की बेड़ी आत्म-ज्ञान से कटती है। मैं शरीर हूँ या आत्मा, उपनिषद् उत्तर देती है कि आत्मा। गीता में कहा गया है :—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि सयाति नवानि देही॥
(गीता २।२२)

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥ (गीता २।२३)

अर्थात् शरीर तो आत्मा का वस्त्र है जीर्ण शीर्ण होने पर आत्मा उसे उतार कर नया शरीर रूपी वस्त्र ग्रहण कर लिया करता है। जब मैं आत्मा हूँ तो मुझे न हथियार काट सकते हैं, न अग्नि जला सकती है, न वायु सुखा सकती है।

इसीलिए ऋग्वेद में शिक्षा दी गई कि **"न मृत्यवे अवतस्थे कदाचन।"** (ऋग्वेद १।१) अर्थात् मैं कदापि नहीं मर सकता। स्पष्ट है जब मनुष्य इतना तत्त्व-ज्ञानी हो जाता है कि अपने को आत्मा समझने लगता है और शरीर को अपने से भिन्न वस्त्रवत् जिसे वह पहनते और उतारते रहते हैं तब वह मृत्यु के भय से स्वतन्त्र हो जाता है मृत्यु की बेड़ी काटने का यही अभिप्राय है। इस तत्व-ज्ञान की प्राप्ति के लिए मनुष्य को अपने शरीर और अपनी इन्द्रियों पर अधिकार रखने का यत्न करना आवश्यक है। इस यत्न के सम्बन्ध में वेद में एक जगह कहा गया है **"आरोह इमम् अमृतं सुखं रथम्।"** (अथर्ववेद ८।१।६) अर्थात् इस अमरता देने वाले सुखकारक (शरीर-रूपी) रथ पर चढ़। अर्थात् शरीर पर अधिकार रख। रथ का विशेष सुख इस मन्त्र में दिया गया है। 'सुखम्' 'दुःखम्' शब्द के अर्थ भी शरीर पर अधिकार रखने के भाव की पुष्टि करते हैं। सुखम् शब्द दो शब्दों सु=इच्छा+खम्=इन्द्रियों से बनता है। इस प्रकार सुख के अर्थ हुए इन्द्रियों को अच्छा बनाना और दुःखम् के अर्थ इन्द्रियों को बुरा बनाना होता है। कठोपनिषद् में भी शरीर को रथ कहा गया है। उस वाक्य में आत्मा को रथी, शरीर को रथ, बुद्धि को सारथि, मन को लगाम, इन्द्रियों को घोड़े और इन्द्रिय विषयों की मार्ग से उपमा दी गई है। उपनिषत् की इस शिक्षा का अभिप्राय है कि आत्मा के अधिकार में बुद्धि, बुद्धि के अधिकार में मन, मन के अधिकार में इन्द्रिय, इन्द्रिय के अधिकार में उनके विषय होने चाहिएँ। ऐसा होने से ही शरीर रूपी रथ का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आत्मा रथी बना करती है। अस्तु, इस शिक्षा पर अमल करते हुए एक बात है जिसका ध्यान रखना चाहिए। वह यह है कि—

"रजस्तमो मा उपगाः मा प्रमेष्ठा।" (अथर्ववेद ८।२।१)

अर्थात् रज (अनियमित कर्तृत्व) और तम अंधकार के पास न जा, मत मर। इसका तात्पर्य यह है कि रज और तम मृत्यु के कारण हैं। इनका आश्रय लेने और इन्हें अपनाने का फल यह होगा कि मृत्यु के जाल में फंसना पड़ेगा। गीता में इसी के लिए श्रीकृष्णजी ने कहा है कि **"रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम्।"** (गीता १४। १६) अर्थात् रज का फल दुःख और तम का अज्ञान=अविद्यान्धकार फल है।

तीसरी शिक्षा जो इस मन्त्र में दी गई है वह है जगत् से पृथक् न होना। हमारे देश में जगत् मिथ्यावाद की शिक्षा ने एक मनोवृत्ति पैदा कर दी है कि जिस से प्रत्येक मनुष्य जगत् को मिथ्या समझने लगा है। फारसी भाषा के ग्रन्थों में भी इस दूषित मनोवृति का अनुकरण किया गया है, जगह-जगह जगत् को "दुनिया भदू"=कमीनी दुनिया कहा गया है यह सब मत शंकराचार्य के उसी जगत् मिथ्यावाद का परिणाम है।

वास्तव में इस दूषितवाद ने आम तौर से देश को और विशेष रूप से हिन्दू जाति को बड़ी हानि पहुँचाई है। इस वाद पर ध्यान देने से स्पष्ट हो जाता है कि इसमें रत्ती भर भी सच्चाई नहीं है। जगत् की किसी वस्तु को लो। उदाहरण के लिए एक सेव को ले लो। इसकी जांच करने से प्रकट होगा कि इसमें दो चीजें हैं एक नामरूप=बाह्य दृश्य(appearance) और दूसरी चीज़ वस्तुतत्त्व (thing is itself) है। नाम रूप केवल लम्बाई चौड़ाई धरातल को कहते हैं, उसमें वजन नहीं हुआ करता। वज़न वाली दूसरी चीज़ वस्तुतत्त्व है। जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक काण्ट ने वस्तु की सत्ता पर विचार करते हुए इन दोनों चीज़ों की सत्ता को स्वीकार किया है। नाम रूप को उसने "एरशायनुंग" Erschainung=appearance बतलाया है और न दिखाई देने वाली वस्तु के भीतरी भाग (तोल आदि) को "डिंग आन सिच" (dingan sich=thing is itself) कहा है। वह वस्तु तत्त्व को अवश्य अदृश्य मानता है परन्तु उससे उसका अभिप्राय ब्रह्म नहीं अपितु वस्तु के भीतरी भाग= असली वस्तु(thing is itself) से है। शंकर के दर्शन=जगत् मिथ्यावाद की त्रुटि यह है कि उन्होंने जगत् और उसकी वस्तुओं को केवल नामरूपात्मक माना है वस्तु तत्त्वात्मक नहीं। वस्तु तत्त्व=बोझ वाली वस्तु को उन्होंने नामरूप (appearance) के भीतर ही लुप्त कर दिया है परन्तु वेद की शिक्षा इस मन्त्र में स्पष्ट है कि इस लोक से पृथक् मत हो जगत् मिथ्या नहीं अपितु सत्य है। यदि शंकर के मतानुसार यह सब ब्रह्म है तब भी सत्य है। यदि वेद की शिक्षा के अनुसार यह प्राकृतिक है तब भी वस्तु तत्त्वात्मक है और सत्य है। इसको मिथ्या कहना इसे न समझने के सदृश है। यह जगत् है जिसमें रहकर हम अभ्युदय निःश्रेयस दोनों की प्राप्ति किया करते हैं। फिर यह मिथ्या कैसे हो सकता है? इसलिए जगत् में आने को अपना सौभाग्य समझते हुए उससे अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहिए।

चौथी शिक्षा यह है कि अग्नि और सूर्य से लाभ उठाना चाहिए। हम पहले अग्नि को लेते हैं। अग्नि कहां कहां है जिससे हमारी रक्षा हो सकती है। इसके लिए वेद में कहा गया है—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रक्षन्तु त्वाग्नयो ये अप्स्वन्ता रक्षतु त्वा मनुष्या यमिन्धते।
वैश्वानरो रक्षतु जातवेदा दिव्यस्त्वा मा प्रधाग्विद्युता सह॥"

(अथर्ववेद ८।१।११)

अर्थात् जो अग्नि पानी में है वह तेरी रक्षा करे जिसको मनुष्य प्रदीप्त करते हैं वह अग्नि तेरी रक्षा करे। समस्त मनुष्य जिस अग्नि से काम लेते हैं वह अग्नि तेरी रक्षा करे। विद्युत् के साथ रहने वाला अग्नि मुझे न जलावे। इस शिक्षा का आशय यह है कि अग्नि समस्त पदार्थों में पाया जाता है। उन सबसे लाभ उठाना चाहिए। अग्नि शब्द अग अगि गत्यर्थक धातु से बनता है। जिसका आशय यह है कि गति से प्राप्त हुआ करती है। टिंडल (Tyndall) ने भी इसकी पुष्टि की है। उसने एक जगह लिखा है कि अग्नि गति का एक प्रकार है (Heat is a move of motion) इसलिए अग्निमय होने से मनुष्यों में गति आया करती है और तभी वह (अग्रणी=आगे ले जाने वाला=नेता) बना करता है। शतपथ ब्राह्मण में अग्नि को "अग्नि रक्षसाम् अपहन्ता" रोगाणुओं का मारने वाला कहा गया है। अग्नि के निकल जाने से प्राणी गति शून्य=शव हो जाता है। जल के भीतर अग्नि का प्रवेश होने से जल भाप रूप होकर रेल, तार, हवाई तथा समुद्री जहाज के चलने का कारण है। अस्तु, अग्नि की उपयोगिता स्पष्ट है। ज्ञानी अज्ञानी सभी उससे लाभ उठा रहे हैं।

अब सूर्य का विवरण सुनिये। वेद में एक जगह कहा गया है **सूर्य ते तन्वे तपाति"** (अथर्ववेद ७।१३।५) अर्थात् सूर्य तेरे शरीर को सुख देने के लिये तपता है। सूर्य से लाभ उठाने के लिए सूर्यस्नान आदि किये जाते हैं जिनसे मनुष्य नीरोग हो जाता है। योरोप में नग्नवाद (Nudism) का जो समुदाय है वह भी सूर्यस्नान के नियमों पर निर्भर है। इस सम्प्रदाय के लोग नंगे इसीलिए होते हैं जिससे सूर्य की किरणें सारे शरीर पर पड़ सकें।

प्रातःकालीन उदय होते हुए सूर्य को जब तक उसमें तेज न आवे और लालिमा रहे टकटकी बांधकर देखने से आंखों की ज्योति बढ़ा करती है। उसी उदय होते हुए सूर्य की पहली किरणें छाती पर लेने से फेफड़े और हृदय पुष्ट होते हैं। परन्तु सूर्योदय के समय यदि मनुष्य आलस्य और प्रमादवश सोता रहे तो फिर सूर्य उसके तेज को हर लिया करता है जैसा कि वेद में लिखा है—

उद्यन्त्सूर्य इव सुप्तानां द्विषतां वर्च आददे॥ (अथर्व० ७।१३।२)

एक वीर पुरुष कहता है कि मैं किस प्रकार शत्रु के तेज को हर लिया करता हूँ जिस प्रकार उदय होता हुआ सूर्य सोने वालों के तेज को हर लिया करता है।

—o—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

गायत्री मन्त्र व्याख्या

ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ।। (यजु० ३६।३)

इसे गुरु मन्त्र सावित्री मन्त्र आदि के नाम से कहा जाता है। गुरु वेदारम्भ संस्कार के समय इसी मन्त्र द्वारा शिष्य को दीक्षा देता है। इसलिए इसे गुरु मन्त्र कहते हैं। गायत्री छन्द में होने तथा गायन्तं त्रायत इति श्रद्धा पूर्वक गान करने व जप करने वाले भक्त की रक्षा करने के कारण इसे गायत्री मन्त्र के नाम से कहते हैं। परमात्मा का स्मरण 'सविता' के नाम से इस मन्त्र में किया गया है इसलिए इसे 'सावित्री मन्त्र' कहा जाता है। गायत्री मन्त्र का पाठ ओ३म् और व्याहृति अर्थात् भूः, भुवः, स्वः सहित किया जाता है। ओ३म् परमात्मा का सर्वश्रेष्ठ नाम है, जिसके जप का विधान 'ओ३म् क्रतो स्मर' इत्यादि वेद मन्त्रों तथा **सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति, तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योम्।।** इत्यादि उपनिषत् वाक्यों में किया गया है। माण्डूक्य उपनिषद् आदि में इसी ओ३म् की विशेष व्याख्या है। योगदर्शन में **"तस्य वाचकः प्रणवः"** इस सूत्र द्वारा **'ओ३म्'** को परमेश्वर का मुख्य नाम बताकर **'तज्जपस्तदर्थभावनम्'** द्वारा उसका अर्थ भावना सहित जप का चित्त की एकाग्रता के लिए विधान किया गया है। केवल उच्चारण से लाभ नहीं हो सकता जब तक उसके अर्थ का चिन्तन भली भांति न किया जाए। ओ३म् का मुख्यार्थ रक्षक है। रक्षक के रूप में परमेश्वर का ध्यान करने से चित्त के अन्दर निर्भयता आती है। जब सर्वशक्तिमान् परमेश्वर हमारा रक्षक है तो भय चिन्ता का क्या काम है? इस प्रकार ओ३म् का जप मनुष्य को सर्वथा निर्भय बना देता है। भूः, भुवः, स्वः ये तीन व्याहृति के शब्द परमेश्वर के गुण सूचक हैं। भू सत्तायाम् से भूः शब्द बनता है जिसमें परमेश्वर के सर्वत्र अस्तित्व का, सर्व व्यापकता का, भाव आता है और स्वः में सुखस्वरूप का भाव। इस प्रकार भूः, भुवः, स्वः, ये शब्द सच्चिदानन्द स्वरूप का भाव सूचित करते हैं। प्रकृति का स्वरूप सत् है, जीव का सत् चित् है और परमात्मा का सच्चिदानन्द स्वरूप है। यह इनका भेद है जीव का उद्देश्य वा लक्ष्य इन शब्दों से सूचित होता है कि वह स्वरूप परमेश्वर का ध्यान कर आनन्द को प्राप्त करे।

जप के लिए ईश्वर के गुणों को लेना चाहिए जिनको हम अपने अन्दर धारण कर सकते हैं। 'राम' शब्द का आध्यात्मिक दृष्टि से अर्थ कई ग्रंथों में **'रमन्ते योगिनोऽस्मिन्'** अर्थात् जिसमें योगी लोग रमण करते हैं ऐसा किया गया है किन्तु यह

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मान लेने पर भी इसके जप से इसलिए लाभ नहीं हो सकता क्योंकि हम सर्वव्यापक नहीं बन सकते। अर्यमा (न्यायकारी) मित्र, वरुण आदि परमात्मा के गुणों को हम अपने अन्दर धारण कर सकते हैं। सविता का अर्थ सर्वोत्पादक है। इस रूप में परमेश्वर का चिन्तन करने से उसके प्रति श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न होते हैं। श्रद्धा का अर्थ श्रत् अर्थात् सत्य को धारण करना है। इसका अर्थ लोगों ने अशुद्ध समझ रक्खा है। वे समझते हैं कि केवल विश्वास से सब बातें स्वयमेव पूर्ण हो जाती हैं। किन्तु यह सत्य नहीं है। यदि एक यात्री अल्मोड़ा की तरफ जाने वाली सड़क पर न जाकर काठगोदाम की सड़क पर चल पड़े और विश्वास करे कि वह अल्मोड़ा पहुँच जायेगा तो यह कैसे हो सकता है। एक बच्चा कौतुक वश अग्नि में हाथ रख देता है जिससे उसका हाथ जल जाता है तब वह इस सचाई को अपने अन्दर धारण कर लेता है कि आग जलाती है। कोई कितना ही कहे तब वह आग में हाथ रखने का नाम नहीं लेता। इस प्रकार करना ही श्रत् वा सत्य को धारण करना है। जितना ज्ञान हृदय में अंकित कर लिया जाता है वही अपना होता है शेष तो पुस्तकों में ही रह जाता है।

वरेण्यम् का अर्थ ग्रहण करने योग्य वा उपासनीय है। भर्गः में पवित्रत का भाव आता है जो अपवित्रता अज्ञानादि को दूर कर दे। हमें इस पवित्रता को अपने अन्दर धारण करना चाहिए।

इत्यादि द्वारा मनु महाराज ने अनेक प्रकार की पवित्रता का प्रतिपादन किया है। इसमें उन्होंने बताया है कि शरीर के अंग जल से शुद्ध होते हैं, मन सत्य के धारण करने से पवित्र होता है। मनुष्य का आत्मा विद्या और तप से पवित्र होता है और बुद्धि ज्ञान से पवित्र होती है। देवस्य में भाव ज्ञान-प्रकाश देने वाले का है। इस ज्ञान की प्राप्ति से मनुष्य को अमृत की प्राप्ति होती है जैसे कि **'प्रतिबोधविदितं मतम्, अमृतत्वं हि विन्दते'** इत्यादि उपनिषद् वचनों में कहा है। साधारणतया इन्द्रियों से बाह्य विषयों का ज्ञान और आत्मा द्वारा परमेश्वर का विशेष ज्ञान विज्ञान के नाम से शास्त्रों में स्मरण किया गया है। ज्ञान, विज्ञान का भेद वही है जो अंग्रेजी Intellect और Intentional Perception में है। आम आदि का स्वाद जैसे पूर्णतया शब्दों द्वारा वर्णन करना असम्भव प्राय है वैसे ही ईश्वर ज्ञान के आनन्द का शब्दों द्वारा वर्णन करना असम्भव है। बुद्धि के द्वारा जगत् का ज्ञान और निदिध्यासनादि द्वारा आत्मा में परमात्मा का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है यही परमात्मा का साक्षात्कार है जो अनुभव का विषय है। इस प्रकार इन गुणों को धारण करने के पश्चात् हम ईश्वर को अपने अन्दर धारण कर सकते हैं। ईश्वर को इसलिए अपने अन्दर धारण किया जाये अथवा उस का ध्यान किया जाये ताकि हमारी बुद्धि कल्याणकारिणी प्रेरिता तथा पवित्र हो जाये।

पाश्चात्य लोगों का आचार व्यवहार यदि प्रेरिता बुद्धि के अनुसार होता तो पशुओं की तरह परस्पर युद्ध तथा भीषण हत्या का घोर दृश्य न दिखाई देता। वे लोग केवल बुद्धि तक सीमित हैं निदिध्यासनादि की उनके अन्दर अभाव के कारण ही सब हानि हैं। ईश्वर से भी अधिक मांगने की आवश्यकता नहीं। केवल शुद्ध बुद्धि को मांगना ही पर्याप्त है जैसे कि इस गायत्री-मन्त्र में किया गया है। इस प्रकार अर्थ सहित इस गायत्री मन्त्र का चित्त को एकाग्र करके जप करने से विशेष लाभ हो सकता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ब्रह्मयज्ञ

धर्मशास्त्र में मनुष्य के दो प्रकार के कर्त्तव्य वर्णित हैं :—(१) नैत्यिक (२) नैमित्तिक। नैत्यिक कर्म वे होते हैं जिन्हें प्रतिदिन करना चाहिए और नैमित्तिक वे हैं जो समय-समय पर, जैसे श्रावणी और दीपमालिका, किये जाया करते हैं। नैत्यिक कर्म ५ हैं—(१) ब्रह्मयज्ञ, (२) देवयज्ञ (३) बलिवैश्वदेवयज्ञ (४) पितृ यज्ञ और (५) अतिथियज्ञ इनमें से ब्रह्मयज्ञ का यहां व्याख्यान किया जाता है।

मनुष्य जब संसार में आता है तो उस के तीन कर्त्तव्य हैं, जिनकी पूर्ति करना उसका ध्येय हुआ करता है :—(१) अपने सम्बन्ध में उसका क्या कर्त्तव्य है, (२) अन्यों के साथ उसे क्या करना चाहिए, तथा (३) ईश्वर के सम्बन्ध में उसका क्या कर्त्तव्य है? ब्रह्मयज्ञ के मन्त्रों में भी इन्हीं उद्देश्य का विवरण दिया गया है। ये कर्त्तव्य क्यों करने चाहिएँ इनका एकमात्र उद्देश्यों यह है कि मनुष्य जब संसार को छोड़े तो संसार की हर्ष मात्रा (Total of Happiness) में कुछ वृद्धि करके जाना चाहिए। यह उद्देश्य सन्ध्या के पहले मन्त्र में वर्णित है—"**शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्रवन्तु नः।।** (यजु० ३६।१२) अर्थात् सर्वप्रकाशक और सर्वव्यापक ईश्वर, इच्छित फल के लिए हम पर कल्याणकारी हो और आनन्द प्राप्ति के लिए, हम पर चारों ओर सुख की वृष्टि करें।" इससे स्पष्ट है कि मन्त्र में प्रार्थना है कि हमारे भीतर बाहर और चारों ओर सुख की वृष्टि हो इस मन्त्र को पढ़कर आचमन करना गौण बात है, मुख्य बात यह है कि मन्त्र के आशय पर विचार कर, सुख वृद्धि का यत्न करना चाहिए।

उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमारे पहले कर्त्तव्य में निम्न बातें सम्मिलित हैं—

पहला कर्त्तव्य-इन्द्रिय स्पर्श मन्त्र में, इन्द्रियों को स्पर्श करते हुए ईश्वर से उन्हें बलवान् और यशस्वी बनाने की प्रार्थना की गई है। तो पहला कर्त्तव्य यह हुआ कि इन्द्रियों को बलवान बनाना चाहिए। बल की उपयोगिता सार्वकालिक है इसीलिए उपनिषद् में कहा गया है कि "**नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः। (मुण्डकोपनिषद् ३।२।४)** अर्थात् ईश्वर भी बलहीनों को प्राप्त नहीं हुआ करता। आज जिस पश्चिमी सभ्यता से हमको काम पड़ रहा है उस के आदर्श हैं (१) Survival of the fittest, (२) The weakest must go to the down, अर्थात् बलवानों को ही जीने का अधिकार है तथा निर्बलों को रसातल को चला जाना चाहिए। इस पाशविक बल की समर्थक सभ्यता का निर्बल होने पर कौन मुक़ाबला कर सकता है। इस सभ्यता के भीतर निर्बलों के लिए कोई स्थान नहीं है यद्यपि यह सभ्यता चिरकाल तक जीवित नहीं रह

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सकती। जैसा कि एक उदाहरण में प्रकट होगा। कल्पना करो एक तालाब है और उसमें १०० मछलियां हैं और उनके भीतर यही बलवानतम के बाकी रहने की सभ्यता प्रचलित है। फल यह होगा कि सबसे निर्बल मछली को बड़ी मछलियां हड़प कर लेंगी। इसके बाद दूसरी तीसरी आदि मछलियों के नष्ट होने का नम्बर आता जायेगा। और इसी प्रकार अन्यों के नष्ट होने पर अन्तिम सौवीं मछली the fittest बलवान् होने पर बाकी रह जायगी। क्या अब वह जीवित रह सकेगी? कदापि नहीं। क्योंकि उसके खाने को अब कुछ बाकी नहीं रहा इसलिए वह स्वयमेव भूख के कारण नष्ट हो जायगी। स्पष्ट है कि यह तालाब मछलियों से बलवानतम के बाकी रहने वाली सभ्यता की बदौलत खाली हो गया। यह सभ्यता इस तालाब की तरह यूरोप का भी नाश करके ही उसका पीछा छोड़ेगी परन्तु जब तक बाकी है उस समय तक उसकी मार से बचने के लिए, उसके मुक़ाबले के लिए हमें तत्पर रहना चाहिए। बल की उपयोगिता लोक कार्य के लिए भी है। इसीलिए इस देश की आर्य माताएँ निर्बल संतान पैदा करने को अपने लिए पातक समझा करती थीं। महाभारत में वर्णित सप्त ऋषियों की यात्रा के प्रकरण में, जिनमें एक ऋषिका अरुन्धती भी थी, उसी अरुन्धती ने कहा था—**"अभोग्या वीरसूरस्तु सा हि स्तैन्यं करोति या।"** अर्थात् जो पाप माता को अनाचार करने और निर्बल सन्तान पैदा करने से लगता है वही चोरी करने वाले को भी लगता है। (महाभारत पर्व) अरुन्धती के इस कथन से स्पष्ट है कि अनाचार करना निर्बल सन्तान और चोरी करना ये एक जैसे पातक समझे जाते थे। कठ जाति की एक व्यवस्था भी इस प्रकरण में लिख देना कदाचित् अनुचित न होगा। पंजाब के जिस इलाके को आजकल मोझा कहते है, वहां एक बड़ी वीर कठ जाति रहती थी जिसने सिकन्दर के छक्के छुड़ा दिये थे। उनका स्वाधीन संघ राज (federation) था। उनके राज्य में प्रत्येक बच्चा संघ का होता था। माता पिता केवल पोषक होते थे। संघ की ओर से सन्तानों के निरीक्षक नियत होते थे। एक मास की आयु होने पर जो बच्चा कमजोर और कुरूप होता था उसे वे मरवा दिया करते थे। इस जाति का उद्देश्य भी यही था कि जाति का कोई व्यक्ति निर्बल न हो। अस्तु! आधुनिक कोट कमालिया के समीपवर्ती एक स्थान के रहने वाली मालव जाति से युद्ध करते हुए सिकन्दर की छाती में ज़ख्म लगा जिससे वह बेहोश होकर गिर पड़ा। उस समय तो वह बच गया परन्तु शीघ्र ही वह घाव उसकी मृत्यु का कारण हुआ। अन्त में सिकन्दर ने उनसे सन्धि कर ली थी।

यहां के लोग वीर, बलवान् और बहादुर होते थे। इसीलिए पहला कर्त्तव्य प्रत्येक मनुष्य का यह है कि वह अपने को बलवान् बनावे। बल का जहां सदुपयोग हो सकता है वहां दुरुपयोग भी, जैसा कि आज (१९४५ ई०) के युद्ध में हो रहा है। इसीलिए दूसरा कर्त्तव्य मनुष्य का यह ठहराया गया कि वह अपने को यश वाला भी बनावे। इस कर्त्तव्य से बल के दुरुपयोग की आशंका जाती रहती है?

तीसरा कर्त्तव्य मार्जन मन्त्र में वर्णित है, अर्थात् मनुष्य को अपने को शुद्ध और पवित्र भी बनाना चाहिए। उसकी आत्मा भी शुद्ध हो, मन भी शुद्ध हो और शरीर भी। इन तीन कर्त्तव्यों के पालन करने से उसके इन्द्रिय, बल, यश और पवित्रता वाले हो जाया करते हैं।

चौथा कर्त्तव्य प्राणायाम है जिसके द्वारा शरीर के भीतरी अवयव, फेफड़े और हृदय आदि पुष्ट हो जाया करते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पांचवाँ और अन्तिम कर्तव्य अपने भीतर श्रद्धा की भावना पैदा करना है। अघमर्षण मन्त्रों से यह कर्तव्य निकलता है। ये मन्त्र ऋग्वेद की ३ ऋचाएँ हैं। इन ऋचाओं में जगदुत्पत्ति का स्थूल ढांचा वर्णित है। ईश्वर की रचना और उसकी महिमा समझने का यह जगत् अनोखा उदाहरण है। जगत् की एक एक बात के समझने का यत्न मनुष्य को थका दिया करता है और उसका अन्त फिर भी समझ में नहीं आता। एक दो उदाहरणों से यह बात भली भाँति समझ में आ सकेगी। ७ रंगों की बात सभी जानते हैं परन्तु प्रश्न यह है कि क्या दुनिया में सात ही रंग हैं ? उदाहरणार्थ एक हरे रंग को ले लो क्या सचमुच हरा रंग एक ही है ? कदापि नहीं। जितने हरे रंग के वृक्षों के पत्ते हैं प्रत्येक की हरियाली निराली है। घान की हरियाली अलग, गेहूँ की अलग, चने की अलग, नीम, बबूल, जामुन, आम आदि प्रत्येक की हरियाली पृथक् है। अब यह हरा रंग कितने प्रकार का है इसकी सीमा नहीं। यही हाल अन्य रंगों का है। जगत् कितना महान् है इसके लिए एक अपने सूरज ही पर दृष्टिपात करो। यह सूरज जगत् के असंख्य सूर्यों में से एक है। कुछ इससे छोटे हैं, कुछ इससे इतने बड़े हैं कि उनके सामने यह सूरज ऐसा ही है जैसा पृथ्वी के मुकाबले में एक पैर से खेलने की गेंद। यह सूरज हमें प्रकाश और गर्मी दिया करता है। सर जैम्स जीन आदि आधुनिक ज्योतिषयों के कथनानुसार इस पृथ्वी को बने हुए तो दो अरब वर्ष ही हुए हैं जैसा कि सूर्य सिद्धान्त आदि मे लिखा है परन्तु उनकी खोज के अनुसार सूरज को बने हुए कम से कम २ नील वर्ष हुए हैं। उसी समय से यह सूरज गर्मी और प्रकाश देता चला आ रहा है। इस गर्मी और प्रकाश देने के कारण सूरज का पिंड प्रति मिनट १५ हज़ार टन कम होता रहता है[1]। सभी जानते हैं कि एक टन २८ मन के लगभग होता है। अब हिसाब लगाओ तो कि उत्पत्ति के समय सूरज कितना बड़ा था ? यह तो अपने एक सूरज का हाल है परन्तु ब्रह्माड में तो असंख्य सूर्य, असंख्य ग्रह और असंख्य ही चन्द्रमा आदि उपग्रह तथा असंख्य ही अन्य पुच्छल तारे आदि नक्षत्र हैं। इस प्रकार जब कोई भी विचारशील जगत् के सम्बन्ध में विचार करने लगता है तो अन्त में उसे थक कर यही कहना पड़ता है कि परमात्मदेव आप महान् हो और आपका रचा हुआ जगत् भी महान् है जिसका वारापार कोई नहीं पा सकता। इस प्रकार जगत् पर विचार करने से विचारकों के हृदयों में ईश्वर के प्रति श्रद्धा की भावना पैदा होती है। यह श्रद्धा है जो मनुष्यों को पाप की ओर जाने से रोका करती है। सन्ध्या में इन अघमर्षण मन्त्रों तक सन्ध्या का यह भाग समाप्त हो जाता है जिसमें वर्णित है कि मनुष्य को अपने सम्बन्ध में क्या करना चाहिए। जो कुछ करना चाहिए उसकी संख्या पांच है (१) अपने को बलवान्, (२) यशस्वी, (३) शुद्ध और पवित्र करना चाहिए (४) प्राणायाम करके शरीर के आन्तरिक अवयवों की भी पुष्टि करनी चाहिए और (५) ईश्वर के प्रति श्रद्धा पैदा करके समस्त पापों से बचने का यत्न करना चाहिए।

अन्यों के साथ हमें क्या करना चाहिए ? यह बात मनसा परिक्रमा के ६ मन्त्रों में वर्णित है। इन मन्त्रों में ईश्वर की व्यापकता को छहों दिशाओं में देखते और उसे नमस्कार तथा उसके रक्षा के साधनों का आदर करते हुए उस से प्रार्थना की गई है—

1, देखो Mysterious Universe and Universe around us.
by Sir James Jenus.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ।" अर्थात् जो कोई हम से द्वेष करता है और जिस किसी से हम द्वेष करते हैं उस द्वेष को आप नष्ट कर दें। जिस से जहाँ हमारे हृदय में किसी के लिए द्वेष न रहे। उसी प्रकार किसी अन्य के हृदय में हमारे लिए भी द्वेष से खाली हुआ करते हैं तभी उनमें सद्भावना की उत्पत्ति होती है और वे सब एक-दूसरे के साथ प्रेम और विश्वास के साथ रहा करते हैं। बस दूसरों के साथ हमारा कर्तव्य यही है कि हम उसके लिए अपने हृदय को ईर्ष्या और द्वेष से खाली रक्खें। बाकी बातें फिर स्वयमेव ठीक हो जाया करती है।

सन्ध्या का तीसरा भाग यह है कि हमारा ईश्वर के सम्बन्ध में क्या कर्तव्य है। इसे उपस्थान के मन्त्रों में वर्णन किया गया है। उपस्थान, उपनिषद् और उपासना। उपनिषद् और उपासना पर्यायवाचक शब्द हैं और इन सब के अर्थ समीप होने के हैं। ईश्वर के समीप किस प्रकार हो सकते हैं यही बात इन मन्त्रों में वर्णित है। इन मन्त्रों में ईश्वर के गुणों का इस प्रकार वर्णन हुआ है :—

मन्त्र	गुण
पहला	(१) तमसस्परि=अंधकार रहित, (२) उत्तर=प्रलय के बाद रहने वाला, (३) देव=प्रकाशमय, (४) सूर्य=प्रकाश पुञ्ज (५) ज्योतिरुत्तमम्=अलौकिक प्रकाशमय,(६) स्व=सुखस्वरूप
दूसरा	(७) जात वेद=वेद का प्रादुर्भूत करने वाला,
तीसरा	(८) चक्षुः=द्रष्टा,
चौथा	(९) शुक्रम्=पवित्र
पांचवां	(१०) भूर्भुवःस्वः=सच्चिदानन्द स्वरूप (११) सवितुः=जगदुत्पादक (१२) वरेण्यम्=ग्रहण करने योग्य, (१३) भर्गः=शुद्ध और पवित्र, (१४) देव=ज्योतिर्मय, (१५) शम्भु=आनन्द मय, (१६) मयोभव=आनन्द स्वरूप, (१७) शंकर=कल्याणकारी, (१८) मयस्कर=सुखदाता, (१९) शिव=मङ्गल स्वरूप, (२०) शिवतर=अत्यन्त आनन्ददाता।

ये २० गुणवाचक शब्द ओ३म् के सिवा, इन मंत्रों में वर्णित हैं। **"तज्जपस्तदर्थ-भावनम्। (योगदर्शन १।२८)**की मर्यादानुसार ओंकार के जप के साथ, इन २० गुण वाचक ईश्वर के नामों का जप करके, उन गुणों को जो इनमें वर्णित हैं, अपने में लाने का प्रयत्न करना चाहिए। इस जप से जिस गुण को उपासक अपने भीतर ले आवेगा, उस अंश में वह एक ओर जहां ईश्वर की समीपता प्राप्त करेगा तो दूसरी ओर इस जप से उसको लाभ यह होगा कि उसके भीतर गुण वृद्धि होती चली जायेगी। मनुष्य ईश्वर की उपासना इसलिए नहीं करता कि ईश्वर को उसकी उपासना की जरूरत है बल्कि इसलिए किया करता है कि इससे उसकी गुण वृद्धि होकर वह उन्नत अवस्था को प्राप्त करेगा।

सन्ध्या के उपर्युक्त विवरण से यह बात साफ प्रकट हो जाती है कि सन्ध्या से मनुष्य की जहां एक ओर लोकोन्नति होगी और वह अपने तथा समाज को अच्छा बनाने के योग्य होगा, वहां दूसरी ओर उसका पग परलोक उन्नति की ओर भी उठेगा और वह इससे धर्म के दोनों पहलुओं अभ्युदय और निःश्रेयस् के प्राप्त करने के योग्य बन सकेगा।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दयानन्द संस्थान का आकर्षक साहित्य

1. Light of Truth

अंग्रेजी सत्यार्थ प्रकाश—महर्षि दयानन्द के महान् ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश का मास्टर दुर्गाप्रसाद कृत यह अनुवाद प्रत्येक दृष्टि से अनुपम है। छपाई, कागज, जिल्द सभी दृष्टि से अत्यन्त आकर्षक यह ग्रन्थ लागत मात्र पर दिया जा रहा है। पृष्ठ ५७८। साइज डिमाई आठवाँ।

कपड़े की बढ़िया जिल्द १२)

2. TEACHINGS OF SWAMI DAYANANDA

—मूल्य १.००

महर्षि दयानन्द की विचार धारा और शिक्षाओं से सभी को परिचित कराने के लिए अनुपम पुस्तक।

3. TEN COMMANDMENTS OF THE ARYASAMAJ

Re. 1.00

आर्य समाज के १० नियमों की अभूतपूर्व व्याख्या : स्व० पं० चमूपतिजी की लेखनी से। स्वामी जी के तिरंगे चित्र सहित मूल्य १)

4. MESSAGE OF THE ARYA SAMAJ TO THE UNIVERSE

भारतेन्द्रनाथ साहित्यालङ्कार लिखित—आर्य समाज का संदेश फैलाने हेतु प्रभावशाली पुस्तिका—जिसका ८ भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। —मूल्य ५० पैसे।

5. VEDIC-PRAYER

संध्या, प्रार्थना, मंत्र, हवन, स्वस्तिवाचन, शाँतिप्रकरण, ईशोपनिषद् आदि सभी की पूर्ण व्याख्या हिन्दी अंग्रेजी में एक साथ—और चुने हुए भजन, भेंट के लिए अत्युत्तम मूल्य २) ५०

6. DAYANAND THE GREAT (तीसरा नया संस्करण)

पं० वेद मित्र ठाकुर लिखित प्रभावशाली ट्रैक्ट मूल्य १५ पैसे

7. AN INTRODUCTION TO THE ARYA SAMAJ

(तृतीय संस्करण) आर्य समाज से सभी को परिचित करनें के लिए प्रभावशाली ट्रैक्ट मूल्य १५ पैसे

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

8. THE GREAT GAYTRI मूल्य २० पैसे। १५) सैकड़ा

गायत्री मंत्र का यह सुन्दर अंग्रेजी अनुवाद प्रत्येक दृष्टि से आकर्षक है। ७५) रिम के सर्वश्रेष्ठ कागज पर रंगीन मोहक छपायी

9. THE VEDIC FUNDAMENTALS RS. 2.50

वैदिक धर्म के सिद्धान्त समझने हेतु प्रभावपूर्ण मार्ग दर्शन

10. VEDIC LIFE

वैदिक जीवन पद्धति पर चुने मंत्रों का अर्थ सहित संग्रह मूल्य २)५०

11. What is yoga ? योग के सम्बन्ध में मार्गदर्शन मूल्य—१५ पैसे

12. The man and His Religion

स्वामी सत्यप्रकाश जो लिखित एक ऐसा ग्रन्थ जो अपूर्व है—मूल्य १)

13. Life of Swami Dayanand D. N. Vasudeva···मूल्य १)

14. Christianity and Vedas

पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड लिखित मूल्य १.५०

15. Bible in the Balance चार्ल्स स्मिथ द्वारा लिखित मूल्य १५ पैसे

16. A challenge to the christian faith स्वामी श्रद्धानन्द ५ पैसे

17. Essence of vedic Religion मूल्य 15 पैसे

18. The Fundamentals of the Arya Samaj मूल्य 15 पैसे

वैदिक हिन्दी साहित्य

१. वदिक सत्संग पद्धति (हिन्दी) नया संस्करण **मूल्य ६० पैसे**

केवल हिन्दी में प्रत्येक मंत्र के साथ उनका अर्थ दिया गया है। २८ पौंड बढ़िया कागज, तिरंगा बढ़िया आवरण, चुने हुए भजन। ८४ पृष्ठ। मूल्य ६० पैसे। ५० रु० सैकड़ा।

२—उपनिषद्—वचनामृत। पं० दीनानाथ सिद्धान्तालंकार—मूल्य ४०पैसे

उपनिषदों का सार पुस्तक में प्रभावशाली ढंग से अंकित हैं।

३—धर्मग्रन्थावलोकन—संसार के प्रमुख धर्म ग्रन्थों का प्रामाणिक परिचय अनुपम ग्रंथ-प्रिंसीपल रत्नचन्द शर्मा एम. ए. लिखित —**मूल्य १) ५०**

४—गीत मंजरी—नया तीसरा बड़ा संस्करण **मूल्य १)४०। १००)सैकड़ा**

ईश्वर भक्ति के गीत और प्रभु से प्रार्थना करते हुए यदि आप सच-मुच अपने आपको भुलाना चाहते हैं तो 'गीत-मंजरी" का सहारा लीजिए।

५—ईश्वर-भक्ति—स्वामी सर्वदानन्द जी द्वारा लिखित अनमोल रचना —**मूल्य ८० पैसे**

६—मोक्ष का वैदिक मार्ग आचार्य वैद्यनाथ-योगिराज पथिक का अनुपम मार्गदर्शन —**मूल्य ५० पैसे**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

—मूल्य ५० पैसे

७—ईशोपनिषद्
हरिशरण जी सिद्धांतालंकार लिखित उपनिषद् की अनुपम व्याख्या।

८—भारत की अवनति के ७ कारण
ब्र० जगदीश एम० ए० की लोह लेखनी द्वारा लिखित। पृष्ठ ६८

—मूल्य ५० पैसे

—मूल्य ८० पैसे

९—वैदिक-अध्यात्म—पं० वीरसेन वेदश्रमी
मंत्रों का यह अध्यात्मपरक भाष्य आपके मन मन्दिर में नयी ज्योति उत्पन्न करेगा, आकर्षक आवरण, बढ़िया कागज।

१०—शतक-त्रयी—वेद के ३०० मंत्रों का अर्थसहित अनुपम संग्रह

—मूल्य १)

मंत्रपाठ और स्वाध्याय के लिए

मूल्य ८० पैसे

११—नीति-दोहावली
प्रत्येक आवश्यक विषय पर उपयोगी दोहे, कविताएँ और प्रमाण जीवन के संदर्भ में प्रेरक मार्ग दर्शन —आचार्य जगदीश विद्यार्थी द्वारा संग्रहीत।

५० पैसे

१२—प्रार्थना-सुमन—
पं० चन्द्रभानु लिखित हिन्दी व अंग्रेजी में वेद मन्त्रों की प्रेरक भावपूर्ण व्याख्या।

१३—मर्यादा पुरुषोत्तम राम—पं० दीनानाथ सिद्धांतालंकार मूल्य ८० पैसे
श्रीराम के इस जीवन चरित्र का अधिकाधिक प्रचार राष्ट्र को सुदृढ़ करेगा।

मूल्य ३)

१४—ज्ञान ज्योति
'ज्ञान' मनुष्य को मनुष्य बनाता है वह ज्ञान वेद की पवित्र ऋचाओं में हमारा मार्ग दर्शन कर रहा है। जीवन के प्रत्येक अंग पर वेद का आदेश स्व० स्वामी सत्यानन्द जी की लेखनी से। उनका माधुर्य वेद की ऋचाओं का हृदय-ग्राही स्वरूप प्रस्तुत कर रहा है।

१५—मां गायत्री—तीसरा संस्करण—मूल्य ८० पैसे-५०) सैकड़ा
इसमें महर्षि दयानन्द महात्मा आनन्द स्वामी, स्व० प्रभु आश्रित जी, स्वामी समर्पणानन्द जी, के अनुपम विचार

२)

१६—वैदिक-सिद्धान्त
वैदिक सिद्धान्त अकाट्य हैं यह स्वयं सिद्ध बात ग्रन्थ पढ़ कर हृदयंगम हो जाती है। आर्य समाज के सुप्रसिद्ध विद्वान् श्रद्धेय पं० यशःपाल सिद्धान्तालंकार द्वारा लिखित।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कम से कम

दो नए सदस्य

जन-ज्ञान (मासिक) के बनाइए

और उन का शुल्क २४) के स्थान पर
केवल २०) भेजिए।

यह सुविधा केवल ३० सितम्बर १९७३ तक
केवल नए सदस्यों
के लिए हैं।

उत्साह पूर्वक कार्य में लगिए।

चित्र परिचय

इस अंक में मुख पृष्ठ पर प्रकाशित चित्र है परम तार्किक वक्त शास्त्रार्थ महारथी श्री पं० रामचन्द्र देहलवी का। काश, कि हमारे मान्य उपदेशक देहलवी जी के चरण चिन्हों पर चलकर अनार्य विचाधाराएं समाप्त करते !

अंतिम पृष्ठ—का चित्र है आदर्श आर्य संन्यासी स्वामी सत्यप्रकाश जी का। आप इलाहाबाद विश्वविद्यालय में विज्ञान विभाग के अध्यक्ष रहे। आप का ज्ञान राष्ट्र का गौरव है। ऐसे तजस्वी-सरल विद्वान आर्य संन्यासी का नेतृत्व ही आर्यसमाज को आगे ले जा सकेगा।

—संपादक

मु०—प्रकाशक पं० राकेशरानी द्वारा, सैनी प्रिन्टर्स पहाड़ी धीरज दिल्ली में छपा।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जन-ज्ञान (मासिक)
१५९७ हरध्यानसिंह मार्ग
नई दिल्ली-५

सितम्बर १९७३

रजिस्टड
डी० १

स्वामी सत्य प्रकाशजी सरस्वती

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi